योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

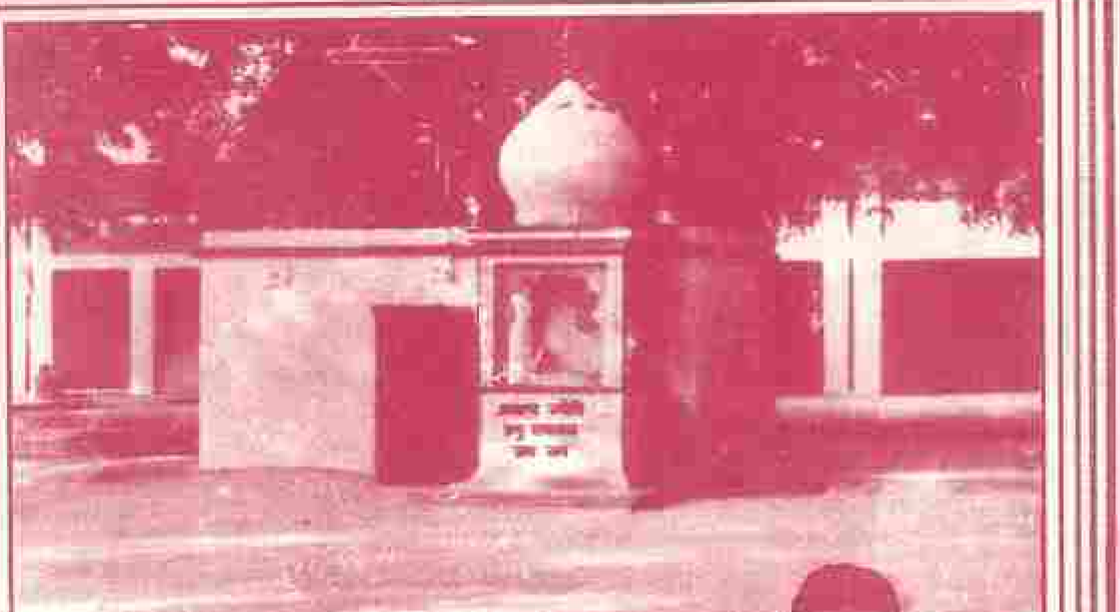

वर्ष 33 अगस्त 2000 अंक 5

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

❒

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

❒

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

❒

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव
विनोद कुमार शर्मा

एक प्रति	रु०	8-00
वार्षिक शुल्क	रु०	75-00
द्विवार्षिक	रु०	140-00
आजीवन	रु०	750-00

इस अंक में

❒ श्रीगणेश विश्व का कल्याण करें.. 1
❒ अमृतकण 2
❒ ध्यान योग की महत्ता व प्रभाव
(विशेष लेख) 3
❒ सम्पादकीय 6
❒ इसी जन्म में ईश्वर और मुक्ति
पाने के अमोघ उपाय
ब्रह्मचारी ओमप्रकाश 8
❒ गुरु-तत्व की प्रामाणिकता
डॉ० स्वामी केशवाचार्य 13
❒ योग-मृत्यु से अमृत जीवन
आचार्य चन्द्रहास शर्मा 20
❒ अद्‌भुत गुरुभक्ति
अंशुमान देव मालवीय 22
❒ विविध रोगों में उनका उपचार 23
❒ देवत्व प्राप्ति का साधन
श्री रघुनंदन सिंह शास्त्री 25
❒ अनाधि महासिद्ध-योगेश्वर
प्रभु रामलाल जी महाराज
पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री 29
❒ श्री गुरुदेव की अहैतुकी कृपा
श्यामलाल चौधरी 34
❒ स्वास्थ्य चर्चा 38

❒ ❒ ❒

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 33
अंक 5

अगस्त
2000

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मूख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवत् महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

श्रीगणेश विश्व का कल्याण करें

कल्याणं वो विधत्तां करटमदधुनीलालकल्लोलमाला-
खेलद्रोलम्बकोलाहलमुखरितदिक्चक्रवालान्तरालम्।
प्रत्नं वेतण्डरत्नं सततपरिचलत्कर्णतालप्ररोहद्-
वाताङंकूराजिहीर्षादरविवृतफणाश्रृंगभूषाभुजंगम्।

(पण्डितराज जगन्नाथकृत महागणपति–स्तोत्र)

भावार्थ

'जिनके करि–कपोलों (गण्डस्थलों) से निरन्तर (सात्त्विक) मदप्रवाह की परम्परा (धारा) प्रस्रवित होती रहती है और जिनके चारों ओर मँडराते हुए भौंरों के मधुर गुंजन से दसों दिशाएँ मुखरित रहती हैं, जो अनादि–सिद्ध प्राचीन गजरत्न हैं, जिनके गजकर्णों के सदा हिलते रहने से उत्पन्न वायु का उनके आभूषण भूत सर्प किंचित् फण फैलाकर पान करना चाहते हैं, वे मंगलमय, सदाचारमूर्ति श्रीगणेशजी आप सब लोगों का सभी प्रकार कल्याण करें।"

अमृत कण

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा हृतेः पात्रादिवोदकम्।।

विदुरनीति १/८२

पाँच ज्ञानेन्द्रियों वाले पुरुष की यदि एक भी इन्द्रिय छिद्र (दोष) युक्त हो जाये तो उससे उसकी बुद्धि इस प्रकार बाहर निकल जाती है, जैसे मशक के छेद से पानी।

***

इन्द्रियाणि पराण्या हुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

श्रीमद् भगवद् गीता ३/४२

कहते हैं कि इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं, इन्द्रियों की अपेक्षा 'मन' अधिक श्रेष्ठ है, मन की अपेक्षा 'बुद्धि' अधिक श्रेष्ठ है और बुद्धि की अपेक्षा 'वह' (आत्मा) अधिक श्रेष्ठ है।

***

शक्यो वारयितुं जलेन हुत भुक्छत्रेण सूर्यातपो।
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदा दण्डेन गोगदर्भो।
व्याधिर्भेषज संग्रहैश्च विविधैर्मन्त्र प्रयोगैर्विषं।
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।

–भर्तृहरि शतक

जल से अग्नि को रोकना सम्भव है, छतरी से धूप का निवारण करना सम्भव है, मतवाला हाथी भी अंकुश से वश में हो सकता है। गौ, गधा आदि चौपाओं को डण्डे से वश में किया जा सकता है, रोग को विविध प्रकार की औषधियों से दूर करना सम्भव है और मन्त्र द्वारा विष भी, उतारा जा सकता है। इस प्रकार पृथ्वी पर सब वस्तुओं की शास्त्रोक्त औषध है परन्तु मूर्खता दूर करने वाली कोई औषधि नहीं है।

***

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

कठोपनिषद् १/२/२४

प्राणी जब तक दुराचार से निवृत नहीं होता, इन्द्रिय दमन नहीं करता और उसका चित्त शान्त नहीं होता, तब तक वह केवल ब्रह्मज्ञान से ही परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर सकता।

विशेष लेख

ध्यान योग की महत्ता व प्रभाव

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने अपने पिछले व्याख्यान में वितर्कानुगत एवं विचारानुगत समाधि का वर्णन किया था, आशा है तुमने समझ लिया होगा। वितर्कानुगत समाधि में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि पञ्च महाभूतों का साक्षात्कार होता है। निर्वितर्क में सूक्ष्म रूपों का साक्षात्कार होता है तथा सविचार में तन्मात्रायें एवं लोक लोकान्तर दिखाई देते हैं। जब योगी ऐसी स्थिति में पहुँचता है तो वह देवताओं से आगे के दायरे वाला होता है। लोग समझते हैं योग रूखी विद्या है किन्तु यह भ्रान्ति है। एक बार हम शिमला गये। हमारे प्रिय श्री श्याम लाल खन्ना शिमले में थे। उन्होंने मुझे वहाँ योग प्रचार हेतु आमन्त्रण दिया। कार्यक्रम स्थल के लिये सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा के लोगों से सम्पर्क किया गया- उन्होंने कहा- योग रूखी सी विद्या है कथा आदि का कार्यक्रम होता तो और बात थी। इस प्रकार उन्होंने अपने यहाँ कार्यक्रम नहीं रखवाया यद्यपि बाद में वहीं पर हमारे कई व्याख्यान हुये। मेरे कहने का तात्पर्य है लोग योग को रूखी विद्या समझते हैं। कहते हैं इसमें कोई आनन्द नहीं आता है सवाई गाँव में जगदीश पालीवाल वर्ष में एक बार अपने यहाँ उत्सव किया करते थे हमें भी व्याख्यान के लिये बुलाया करते थे। एक बार वृन्दावन के पं० वनमाली नाम के विद्वान भी बुलाये गये थे। मेरे व्याख्यान को सुनकर पहले तो प्रशंसा की। बाद में कहने लगे इनकी बात को मानना नहीं। संनिपात के रोगी को हलुआ खिलाओगे तो अवश्य मरेगा। वह कहने लगा-

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नाम केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

दूसरी की स्टेज थी उस समय हमने उनका खंडन नहीं किया। दूसरे दिन फिर हमारे व्याख्यान की बारी आई। हमने भी उनकी बात दोहराई।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नाम केवलम्' हमने कहा- एक टेप रिकार्ड बज रहा है वह बोल रहा है हरे राम, हरे राम क्या उसकी मुक्ति हो जायेगी। वह कहने लगा- वह तो जड़ है उसकी क्या मुक्ति होगी। मैंने कहा- अच्छा, सड़क पर एक पागल है उसका दिमाग ठीक नहीं है उसे भले बुरे का कोई ज्ञान नहीं। उसके मुख से यदि राम, राम निकलता है तो क्या उसकी मुक्ति हो जायेगी- वे कहने लगे- उसकी क्या मुक्ति होगी उसमें तो सोचने की शक्ति ही नहीं है। वह तो चेतन है फिर भी मुक्ति नहीं होगी। आखिर राम नाम कहने से किसको मुक्ति होगी ? यह सवाल उपस्थित हुआ- इस सवाल का जवाब मैंने ही दिया। मैंने तुलसीदास के समय का एक उदाहरण दिया। उनकी सभा में एक बार एक सवाल आया कि कौन व्यक्ति कितनी बार राम नाम के उच्चारण से एक कोढ़ी को ठीक कर सकता है। किसी ने कहा- मैं दो लाख राम नाम जप कर एक कोढ़ी को ठीक कर सकता हूँ। इस प्रकार किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ। आखिर में तुलसीदास जी ने कहा-'राम' इस शब्द की आवाज जहाँ तक जायेगी वहाँ तक के सब कोढ़ी ठीक हो जायेंगे। अब इसमें क्या अन्तर पाया ? तुलसीदास एक बार 'राम' कहने से हजारों कोढ़ी ठीक करने की क्षमता रखते हैं और दूसरे

लोग लाखों बार राम नाम जपने से एक कोढ़ी को ठीक करने की घोषणा करते हैं। फिर मैंने कहा-यह तो ठीक है 'कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा' कलिकाल में एकमात्र राम नाम गति का साधन है। किन्तु यह अवश्य कहता हूँ बिना योग के कोई भी नाम मुक्ति का साधन नहीं बन सकता। र,म,च,छ,क आदि ये शब्द हैं आकाश से उत्पन्न होते हैं आकाश में लय हो जाते हैं। नमः शिवाय, रामाय नमः, नमो भगवते वासुदेवाय, ओम आदि-आदि शब्द हैं आकाश से उत्पन्न होते हैं इसी में लय हो जाते हैं। शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता जब तक कि वह शब्द जिस अर्थ के लिये प्रयोग किया जा रहा है वह अर्थ ध्यान में न हो। शब्द के साथ जब तक अर्थ का चिन्तन नहीं होगा तब तक उससे कोई कोई लाभ नहीं। नाम और नामी का अभेद सम्बन्ध रहता है। गीता में भगवान ने स्पष्ट कहा है-

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन मामनुस्मरन्' यदि केवल व्याहरन कहते तो 'ओम' इस उच्चारण से ही मुक्ति होती किन्तु साथ में 'मामनुस्मरन' कहा है। 'ओम्' इस उच्चारण के साथ मुझे याद करता हुआ जो अपने शरीर को छोड़ता है वह परमगति को प्राप्त होता है। योगदर्शन इस बात को बतलाता है ईश्वर का वाचक प्रणव है उस प्रणव का जप करना चाहिये किन्तु **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** के सिद्धान्तानुसार उस ओम के अर्थ की भावना रखनी चाहिये। इसका मतलब यह हुआ कि जो लाखों बार राम नाम का जाप करके एक कोढ़ी को ठीक करने का दावा करते थे उनके शब्दों के साथ अर्थ-भावना की कमी थी-तुलसी दास की ही पूरी अर्थ भावना थी। गोस्वामी तुलसीदास की ईश्वर प्रणिधान की श्रेणी थी। उन्हें हम भक्ति श्रेणी में ले यह तो ठीक है किन्तु भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच कर वे ईश्वर प्रणिधान अर्थात् आत्म निवेदन की स्थिति पर पहुँच चुके थे। **'समाधिसिद्धीरीश्वर-प्रणिधानात्'** के नियमानुसार तुलसीदास की सम्प्रज्ञात समाधि थी। ईश्वर-प्रणिधान अथवा भक्ति विशेष से आकृष्ट किया हुआ ईश्वर उस पर अनुग्रह करता है और उसकी अभीष्ट वस्तु समाधि उसे प्रदान कर देते हैं। तुलसीदास पर काशी में भगवान शिव ने शक्तिपात किया और कहा-जाओ चित्रकूट को हर समय भगवान राम के दर्शन होने लगे इस विशेषता के कारण तुलसीदास के मन में ताकत थी- वह ध्यान में बैठा करते थे अन्तर्मुखी बन गये थे जो उनके मानसिक शक्ति का कारण था। एक ध्यानी साधक यदि दूसरे व्यक्ति का स्पर्श करता है तो उसका भी ध्यान लग सकता है यह कोई बड़ी बात नहीं है। कहा है-

यस्मिन् देशे वसेत योगी ध्यान योग विचक्षणः ।
सोऽपिदेशः भवेत पूतः किं पुनस्तस्य बाँधवाः।।

जिस देश में एक ध्यान योगी वास करता है वह देश का देश पवित्र हो जाता है फिर उसके बन्धु-बांधवों का क्या कहना। तुमने एक बात सुनी होगी। प्रह्लाद को वरदान हुआ कि इसकी सात पीढ़ी स्वर्ग को चली जाये इसका कारण यह है कि अंश अंशी का रक्त का सम्बन्ध रहता है इसलिये प्रह्लाद में अपने वंशजो का रक्त होने तथा प्रह्लाद के उनका शुभ चिन्तन करने से उनकी मुक्ति अवश्यम्भावी है। क्योंकि प्रह्लाद का मन एकाग्र है इसलिये उसके मन में शक्ति है। तुम स्वयं प्रयोग करके देख लो। एक कमरे में ८-१० दिन किसी अच्छे ध्यानी को बैठाओ इसके बाद जिसका ध्यान न लगता हो उसको भी वहाँ बैठाओ उसका भी अवश्य ध्यान लगने लगेगा। क्योंकि उस कमरे में योगी ने वास किया है उसके परमाणु वहाँ स्थित हैं। जिस समय आनन्दकन्द श्री प्रभु जी अमृतसर रहा करते थे उस समय सत्संग में रीड़ और मल्लन ये दो अंग्रेज भी आया करते थे। ६

ध्यान के लिये प्रार्थना किये जाने पर प्रभु जी उन्हें भी अन्य ध्यानाभ्यासियों के बीच बैठा दिया करते थे। वहाँ बैठने के फलस्वरूप उन का भी खूब ध्यान लगा करता था। सवाई गाँव में हमारी सिद्ध गुफा है देखो। मैं तो निमित्त मात्र बना हूँ। प्रातः जैसे मैं तुम्हें नाश्ते में हलवा आदि परोसता हूँ कछड़ी से परोसता हूँ इसी प्रकार से मैं तो कछड़ी का काम कर रहा हूँ। सिद्ध गुफा में उन सर्व शक्तिमान की कृपा से लोगों को बड़ी-बड़ी दिव्यानुभूतियाँ होती हैं। हमारे बड़े गुरू भाई ब्र० गोपालानन्द जी थे तुम लोग सोचते होंगे कि कोई और भी आप के गुरू भाई ताकतों वाले हैं आप तो ब्र. गोपालानन्द जी की ही बात करते हैं- ऐसी बात नहीं है हमारे और भी गुरू भाई बहुत बड़ी-बड़ी ताकतों वाले हुये हैं। हरिहरानन्द जी भूतजयी सिद्ध हैं। वे हिमालय में समाधिस्थ हैं वे चाहें तो सशरीर ब्रह्म लोक तक आ जा सकते हैं। मैं तुम्हें ब्र. गोपालानन्द जी बातें इसलिये बताया करता हूँ क्योंकि मैं उनके साथ अधिक रहता था और उनका मेरे प्रति विशेष स्नेह था। लाहौर में जब हमारा कृष्णगली नं० २ गवालमण्डी में जब आश्रम खुला ही था तो ब्रह्मचारी जी ने कहा देखो ! हम एक कमरा सिद्ध करें। आश्रम में बीच का एक हाल सिद्ध करने के लिये छः कमरे में केवल ध्यानाभ्यास या कीर्तन ही होता था। परिणाम यह निकला कि जिसको दीक्षा आदि देकर वहाँ ध्यान में बिठाते उसका ध्यान अवश्य लगता था और परम शान्ति मिलती थी। **'सोऽपि देशो भवेत् पूतो किं पुनस्तस्य बांधवाः'** भाई बन्धुओं के लिये विशेषता क्यों कही ? विशेषतः इसलिये कही क्यों कि भाई बन्धुओं से अंश अंशी का सम्बन्ध है इसलिये योगी का तेज अपने अंश में जाना स्वाभाविक है। इसलिये लोग कहा करते हैं, तथा पुराणों में भी इस बात का संकेत है कि जिस कुल में एक अच्छा योगी या भक्त पैदा हो जाता है उस की कई पीढ़ियाँ तर जाती हैं।

एक बार श्री प्रभु जी के चरणों में भी इस प्रकार का जिक्र आया। एक हमारे अच्छे ध्यानी गुरु भाई थे। पितरों के लिये कुछ करने की बातें चलीं। श्री प्रभु जी ने भी उससे पूछा- तुम कुरुक्षेत्र नहीं गये ? गया में पिण्डदान आदि नहीं किया। उस गुरू भाई ने विनीत भाव से कहा- नहीं। प्रभु जी ! मैं कहीं नहीं गया। इस प्रकार श्री प्रभु जी ने कहा- अब तू इस स्थिति में है उनके (पितर) बारे में जब भी जैसा चाहेगा हो ही जायेगा। हमें यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ-उनके लिये कुरुक्षेत्र, गया जाने की जरूरत नहीं जब चाहेगा वैसा हो जायेगा, ऐसा प्रभु जी ने क्यों कहा- यह था उनके ध्यान योग की शक्ति का फल जिसके फलस्वरूप वे अपने चिन्तन मात्र से दूसरे के कल्याण में सक्षम बन गये थे। हमारे एक गुरु भाई मुजफ्फर नगर के थे उनका पहले का नाम रामरतन था। बाद में वे सन्यासी हो गये थे और परमार्थ निकेतन के पास अध्यात्म योगाश्रम की स्थापना कर वहाँ रहने लगे थे। श्री प्रभु जी से दीक्षा लेने के बाद प्रभु जी ने उन्हें मूलाधार कमल में ध्यान लगाने की आज्ञा दी। वे गणपति में लय हो जाया करते थे। श्री प्रभु जी उसे 'गणेश' कहकर पुकारा करते थे। 'अरे गणेश इधर आ' ऐसा सुनते ही वे चटपट आ जाया करता था। वे गणेश में लय रहा करते थे। एक बार एक साधक प्रभु जी के पास आया था। वह बीस साल से मौनी था। एक व्यक्ति ने सवाल किया प्रभु जी से- प्रभु जी ! वह बीस साल से मौन है। उसमें और रतनलाल में कौन श्रेष्ठ है ? प्रभु जी हंस कर कहने लगे अरे ! रतन कुछ और है, और वह कुछ और है। रतन यूँ फूँक मार देगा तो वह उड़ जायेगा मतलब ? यह रतनलाल के मानसिक स्थिति की बात कही थी। अस्तु।

इस प्रकार से ध्यान योग की बहुत बड़ी महिमा उपनिषदों में गाई गई है। इसलिये तुम लोग भी ध्यान योगी बनने का प्रयत्न करो। बार-बार आशीर्वाद।

※※※

इष्टदेव सम्प्रयोग

ईश्वर को मानने वाले दो प्रकार के साधक संसार में सदा से होते आये हैं। इनमें एक सगुण साकार को मानने वाले हैं तथा दूसरे निर्गुण निराकार को। दोनों ही प्रकार के साधक अपनी रुचि तथा पद्धति के अनुसार ईश्वर की आराधना करते हैं। इसी के अनुसार ही संभवतः भगवान ने गीता में ज्ञाननिष्ठा और कर्म निष्ठा वाले योगियों की दो प्रकार की निष्ठाओं का वर्णन किया है। वस्तुतः देखा जाये तो कर्मनिष्ठा के पश्चात् ही ज्ञाननिष्ठा बन पाती है। अनेक जन्मों के तप एवं स्वाध्याय से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। भगवान ने गीता में साकार उपासकों और निराकार उपासकों के विषय में कहा है कि ये दोनों ही मुझे प्राप्त करते हैं किन्तु **'अव्यक्ता ही गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते'** देहधारियों से अव्यक्त की स्थिति बहुत कठिन है इसके विपरीत जो सगुण ईश्वर की उपासना करते हैं उनकी उपासना सरल है और वे शीघ्र ही संसार सागर से तर जाते हैं। सगुण उपासना सरल है क्योंकि जब तक हम गुणात्मिका सृष्टि में चल रहे हैं तब तक इसके प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकते। मन-बुद्धि भी गुणधर्म में ही वर्त रहे होते हैं। निर्गुण ब्रह्म की उपासना कठिन इसलिये है क्योंकि निर्गुण मन बुद्धि का विषय नहीं बन सकता है। श्रुति में कहा गया है- **''यन्मनसा न मनुते येन आहुर्मनो मतम्। तदेव ब्रह्म विद्धि।''** तथा **''सर्वं येनानुभूयन्ते य स्वयं नानुभूयते, तमात्मानं वेदितारं विद्धि बुद्ध्या सुसूक्ष्मया''**। अर्थात् जो सबका अनुभव रखता किन्तु जो किसी से अनुभव में नहीं आता उस सर्वज्ञ आत्मा को भोग जन्य अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि से जानों।

इस संसार में मनुष्य भगवान शिव, भगवान कृष्ण, भगवती दुर्गा आदि के योगैश्वर्य एवं शक्ति को देखकर उनके सामने नतमस्तक होता है उन्हें पूजता है व आराधना करता है। उनकी उपासना से मनुष्य अपने उपास्य के गुणों से युक्त होकर ज्ञान विज्ञान से तृप्त हो जाता है आजकल समाज में अनेक प्रकार के पन्थ, मत चल पड़े हैं। इनमें से कई मत के अनुसार भगवान कृष्ण आदि भी भगवान की कोटि में नहीं आते वे लोग इन्हें देवता मानते हैं या महापुरुष मानते हैं। ऐसे लोग अबोध हैं ये लोग भगवान के दिव्य जन्म एवं कर्म के रहस्य को समझ नहीं सकते। ईश्वर जब सगुण रूप होकर अपने प्राकट्य से संसार में प्राणियों के कल्याण एवं उत्थान के लिये अपने कर्म रूपी लीला करते हैं तो इससे मनुष्यादि उच्च स्तर के जीव लाभान्वित होते हैं तथा उन्हें अपना परम इष्ट या आदर्श पुरुष मानकर उनके कहे अनुसार चलने का प्रयत्न करते हैं। जो लोग सीधे ब्रह्म या निराकार में लयता चाहते हैं उन्हें पहले सगुण में लयता प्राप्त करनी चाहिये। भगवान के नाना रूप गणेश, शिव, श्री कृष्ण आदि परासत्तायें हैं जिनमें योगी अपने को लय करके देखे। जिनको लयता की योग्यता ही प्राप्त नहीं है किन्तु इन रूपों की महत्ता व शक्ति को नकारते हैं वे लोग वस्तुतः दया के पात्र हैं। वे लोग एक तरफ तो भगवान कृष्ण को महापुरुष मानते हैं किन्तु भगवान नहीं मानते हैं उन्हें भगवान के **'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते'** की बात को ध्यान में रखना चाहिये। क्या आप जिन्हें महापुरुष मानते हो वह झूठ भी बोल सकते हैं वे कहते हैं कि मैं ही इस विश्व में सब का उत्पत्ति कर्ता हूँ। मुझ से अतिरिक्त इस जग में और कुछ भी नहीं है। इस प्रकार की घोषणा करते हैं। इस प्रकार से एक तरफ ये भगवान् को महापुरुष तो मान लेते हैं किन्तु उनकी वाणी पर कदाचित् विश्वास नहं करते। जिनकी अर्न्तदृष्टि खुली नहीं है और ईश्वर के सगुण रूप की निन्दा या अवहेलना करते हैं तो वे गलती पर हैं। अन्यथा जो योगी अर्न्तदृष्टा या तत्वदृष्टा बन

गये हैं वे भगवान के सगुण रूप की भी उसी प्रकार पूजा करते हैं जैसे वे निर्गुण की करते हैं। ध्यान योग से ही योगी को यह सामर्थ्य प्राप्त होता है कि वे सृष्टि में विभूतिमान की विभूतियों को देखने में समर्थ हो जाता है। ये सब मन की लयता से संभव है। भगवान् ने गीता में इनके लिये एक क्रम बताया है जो क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म में जाने की प्रक्रिया है। स्थूल शरीर से इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं इन्द्रियों से सूक्ष्म मन है मन से सूक्ष्म बुद्धि है तथा बुद्धि से सूक्ष्म आत्मा है। इसलिये योगी को चाहिये कि वह प्रथमतः इन्द्रियों का साक्षात्कार करे पश्चात् मन का, बुद्धि का तथा अन्त में आत्मा का साक्षात्कार करे। इसी क्रम से योगी की पात्रता बनती चली जाती है। सगुण उपासना का यही तात्पर्य है कि योगी पहले स्थूल तत्वों में मन लगाता जाये और अन्त में निराकार, अव्यक्त आत्मा का अनुसंधान करे। जिनकी स्थूल तत्वों में लयता की सामर्थ्य नहीं है वे सूक्ष्मतम आत्मा का अनुसन्धान कैसे कर सकते हैं ? ध्यान योग से योगी के अन्दर आत्म तेज बढ़ता है तभी वह भगवान के तेज को सहन कर सकता है। भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने अर्जुन को अपना विश्व रूप दिखाया तो अर्जुन बुरी तरह घबरा गये उनके अनन्त तेज राशि को वे सहन नहीं कर सके इसलिये बार-बार कहने लगे। प्रभो! आप मुझे शीघ्र अपने चतुर्भुज रूप का दर्शन करायें- **'तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते !'** हे विश्व मूर्ति! आप उसी चतुर्भुज रूप में आ जाओ। अर्जुन योग की उच्चतर भूमिकाओं का अभ्यासी नहीं था इसी कारण से तेज को सहन नहीं कर सका। श्री वृन्दावन धाम में आज भी निधिवन में भगवान कृष्ण महाराज निवास करते हैं। कई भक्तों ने वहाँ झाड़ियों में छिपकर रास देखने का प्रयास किया। प्रातः वे लोग मृत पाये गये अथवा कई एक पागल हो गये इसका भी यही कारण है कि वे लोग भगवान के शरीर से निःसृत तेज को सहन नहीं कर पाये। क्योंकि ध्यान योग के द्वारा उन्होंने अपने सूक्ष्म शरीर को इतना सबल नहीं बनाया था। प्रातः स्मरणीय गुरुदेव जी के गुरु भाई गुरूदेव के साथ श्री वृन्दावन वास के समय निधिवन के पास ही ध्यान में बैठ जाते थे और सारी रात्रि रास को देखा करते थे। योगी लोग मानते हैं कि जब तक इष्ट देव और साधक के मध्य परमाणु साम्यता नहीं होती तब तक इष्ट का दर्शन संभव नहीं है। अर्थात् इष्टदेव के तेज को आत्मसात करने की शक्ति साधक में हो तो दर्शन संभव होता है। इसलिये आन्तरिक तेज को बढ़ाने के लिये गुरुमन्त्र का जाप एवं ध्यान पर बल दिया जाता है। ताकि साधक के अन्दर दिव्यता आ जाये। सिद्ध गुरु शक्तिपात करके अपने शिष्य के अन्दर दिव्यता लाकर उसे इष्ट दर्शन करा दिया करते हैं। किन्तु उनको प्राप्त यह दिव्यता स्थायी नहीं रह पाती। इसलिये साधक हमेशा इष्ट दर्शन नहीं कर पाता है। यदि साधक योग साधन करता हुआ अपने अन्दर उतना आत्म तेज उत्पन्न कर ले तो वह अपनी इच्छा से जब चाहे इष्ट दर्शन लाभ कर सकता है। भगवान कृष्ण भगवान शिव आदि भगवान के सगुण रूप हैं ये अनादि महासिद्ध है कोई व्यक्ति चाहे कि मैं इनसे आगे निकल जाऊँ या इनसे बड़ा हो जाऊँ तो यह असंभव सी बात है जीव अपने पुरुषार्थ से अपना अज्ञान बन्धन छुड़ा ले ये ही उसके लिये बहुत बड़ी बात है। इन्हीं महासिद्धों से ही यह सृष्टि विलास पल रहा है। अतः इनकी उपासना करके अपने चित् शक्ति को इनमें लय करके हम भी मोक्ष भाजन बन सकते हैं। इनकी शक्ति से ओत-प्रोत हो सकते हैं। श्रद्धा एवं योग विज्ञान से ही उनसे तादात्म्य स्थापित करना संभव है; अन्य किसी उपाय से नहीं। योग शास्त्र में इसका एक मात्र मूल साधन स्वाध्याय एवं योग समाधि बताया है। **'स्वाध्याया दिष्ट देवता सम्प्रयोग'** इष्ट देव के मन्त्र का श्रद्धा पूर्वक जाप एवं स्वरूप के ध्यान से उनका दर्शन संभव हो जाता है। उनका दर्शन मनुष्य के कल्याण का कारण बन जाया करता है।

***

इसी जन्म में ईश्वर और मुक्ति पाने के अमोघ उपाय

लेखक-ब्रह्मचारी ओमप्रकाश, लखनऊ

योग योगेश्वर जगतगुरू परमात्मा श्री कृष्ण ने गीता में स्वयं अपनी प्राप्ति एवं मोक्ष प्राप्ति के उपाय अपने ही मुखारबिन्द से इस प्रकार बताये हैं। इतने उपायों में से तुम अपने अनुकूल एक उपाय को अपना कर ईश्वर दर्शन व मुक्ति प्राप्त कर सकते हो।

१. जो व्यक्ति मुझ परमेश्वर में अपने चित्त को एकाग्र करके तथा सारे कर्म मुझमें सौंप कर कर्तव्य का अभिमान छोड़कर निष्काम भाव से जो कर्म करता है वह इस कर्म योग के द्वारा मुझ ईश्वर को प्राप्त होता है। निष्काम कर्म के द्वारा चित्त शुद्ध होने पर उसे मोक्ष लाभ मिलता है।

२. जो व्यक्ति जो कुछ भी कर्म करता है वह सब कर्म मुझे सौंप कर करने से उन कर्मों के शुभ-अशुभ बन्धन से वह मुक्त रहकर शरीर के अन्त होने पर वह मुझ परमात्मा को प्राप्त होता है।

३. जो व्यक्ति एक मात्र मुझ ईश्वर को ही पूर्ण रूप से चाहता है, मुझमें ही प्रसन्न, तृप्त और सन्तुष्ट रहता है वह मुझको ही प्राप्त होता है।

४. जो व्यक्ति अपने मन को चित्त को मेरे में लगाकर मेरा भक्त बनता है, मेरी ही पूजा करता है, मुझको ही नमस्कार करता है, मेरी शरणागत होकर अपने को मुझ में युक्त रखता है वह मुझे ही प्राप्त होता है।

५. जो व्यक्ति परमेश्वर रूप मुझ में अपने समस्त कर्म सौंपकर केवल मेरी ही प्रीति के लिए एक मात्र भक्ति योग का आश्रय कर मेरी ही उपासना करता है, उनका मैं बहुत शीघ्र ही मृत्युभय दूर कर इस संसार-सागर से उद्धार कर देता हूँ।

६. भगवान आश्वासन देकर कहते हैं जो व्यक्ति विश्व रूप मुझ परमेश्वर में ही अपने मन को स्थापित करके मुझमें ही अपनी बुद्धि को निविष्ठ रखते हैं, ऐसे व्यक्ति का शरीर छूटने पर वह मेरे ही स्वरूप को प्राप्त करता है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

७. जो व्यक्ति अपने शरीर के द्वारा किए गये सारे कर्म अपने मन का मनन तथा बुद्धि के विचार आदि सब कुछ मुझमें लगा देता है इसके परिणाम स्वरूप उसके शरीरान्त के बाद निश्चय ही मुझ परमेश्वर में निवास करता है- यह मेरा निश्चित सिद्धान्त है इसमें कोई संशय न करें।

८. यदि कोई व्यक्ति अपना चित स्थिरता से मुझ परमेश्वर में नहीं लगा सकता तो वह

बारम्बार अभ्यास योग के द्वारा मेरे पास पहुँचने की चेष्टा करे। अर्थात् अपने चंचल चित्त को बारम्बार विषयों से हटाकर अभ्यास योग के द्वारा मेरे पास पहुँचने की चेष्टा करें। अर्थात् अपने चंचल चित्त को बारम्बार विषयों से हटाकर अभ्यास योग के द्वारा मेरे विश्व रूप मे लगाने का अभ्यास करे। ऐसा अभ्यास करने से कुछ काल में उसका मन स्थिर हो जायेगा। इस प्रकार अभ्यास योग की सहायता से मेरी प्राप्ति संभव है।

९. श्री कृष्ण अपनी प्राप्ति के उपायों को और भी सुगम और सहज करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति अगर अभ्यास का अवलम्बन करने में भी समर्थ नहीं तो मेरी प्रीति के लिए वृत, पूजा, अर्चना, नाम कीर्तन आदि करने से भी क्रमशः चित्त शुद्धि होने पर उसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह उस ज्ञान को प्राप्त कर मुक्ति को पा जाता है।

१०. ईश्वर प्राप्ति के साधनों को और भी सुगम करते हुए भगवान कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति वृत, पूजा आदि करने में यदि समर्थ नहीं है तो मेरी शरणागत होकर अपने सभी कर्मों के फल को मुझे अर्पण कर दे। इस तरीके से भी व्यक्ति कर्म फलासक्ति त्याग कर भी मेरी कृपा पाकर वह कृतार्थ हो जाता है। कर्म फलासक्ति ही बन्धन का कारण है। आसक्ति का त्याग होने से संसार से चिर मुक्ति का लाभ मिलता है।

११. 'मै' परमात्मा ही आत्म रूप से प्रत्येक शरीरों में अवस्थित हूँ। प्राणियों के समस्त कर्मों का साक्षी हूँ जो मुझे सर्वत्र सब में तथा मुझ में सबको देखता है न वो मुझसे दूर है और न मैं उससे दूर हूँ। मुझ परमेश्वर का ही अनादि अंश संसार में जीवन बनकर प्रकृति में आकर्षित है।

१२. जिस व्यक्ति में अहंकार और मोह नहीं है, जो विषयासक्त नहीं है जो व्यक्ति आत्म निष्ठ है तथा द्वन्द्वों से विमुक्त है वह मेरे परम पद को प्राप्त होते हैं।

१३. जो व्यक्ति मुझ परमेश्वर के साथ कर्म से, मन से, भाव से विचार व ध्यान आदि किसी भी तरह से संयुक्त रहता है। यह ईश्वर शरणागति ही सर्वश्रेष्ठ योग है। शरणागत भक्त की मैं सभी अवस्था में रक्षा करता हूँ। और मैं ही उसके योग क्षेम का वहन करता हूँ।

१४. जो भक्त सर्व धर्म कर्मों को छोड़कर केवल मात्र एक मेरी ही शरण ले लेता है उसको मैं सब प्रकार के पापों से मुक्त कर देता हूँ उसके समस्त संसार बन्धनों को काट कर उसे चिर मुक्त कर देता हूँ।

१५. जो व्यक्ति मन से समस्त धर्म कर्म मुझमें सौंपकर सर्वदा अपना मन मुझमें रखता है अथवा अपने मन में मुझको रखता है और अपने अधिकार के अनुसार स्वधर्म का पालन करता है वह व्यक्ति उसी से मेरी प्रसन्नता को पाकर मुक्त हो जाता है।

१६. जो व्यक्ति एक मात्र मेरा ही चिन्तन करता है मेरी ही भक्ति करता है, मेरी ही पूजा तथा मुझको ही नमस्कार करता है। इस प्रकार करके वह मुझको ही प्राप्त हो जाता है।

१७. जो व्यक्ति योगी हो जाता है उसको मैं प्राप्त होता हूँ। योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्र ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है, और सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है। इसलिए मेरी आज्ञा है कि तुम सब योगी हो जाओ क्योंकि योग के द्वारा मैं प्राप्त होता हूँ।

१८. यह अद्‌भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी ही दुस्तर है, लेकिन जो व्यक्ति केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं जो मेरे आश्रय में आ जाते हैं वह माया का उल्लंघन करके संसार सागर से तर जाते हैं वह मुक्त हो जाता है।

१९. जो व्यक्ति अपनी आत्मा में ही रमण करने वाला है और आत्मा में ही तृप्त तथा आत्मा में ही संतुष्ट है वह कर्म बन्धन से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

२०. जो व्यक्ति सब समय में निरन्तर मेरा स्मरण कर और कर्म भी कर इस प्रकार मुझमें अर्पण किए हुए मन बुद्धि से मुक्त होकर वह निः सन्देह मुझको ही प्राप्त होता है।

२१. जो व्यक्ति सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् कर्तव्य कर्मों को त्याग कर केवल एक मुझ सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जाता है। मैं उसे सम्पूर्ण पापों से मुक्त करके अपने में मिला लेता हूँ।

२२. जो व्यक्ति मेरे मन में अपना मन, मेरी बुद्धि में अपनी बुद्धि, मेरे चित्त में अपना चित्त तथा मेरे अहंकार में अपना अहंकार मिला देता है वह निश्चित रूप से मुझको प्राप्त कर मेरा ही रूप हो जाता है।

२३. जो व्यक्ति सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममता रहित अहंकार रहित और स्पृहा रहित हो जाता है वह परम ब्रह्म तथा परम शान्ति को प्राप्त होता है।

२४. मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का त्याग कर मुझ भगवान के स्वरूप का मनन करने वाला कर्म योगी मुझ परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। मुझ परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूप योग से मुक्त व्यक्ति जो दूसरी तरफ न जाने वाले चित्त से निरन्तर मेरा चिन्तन करता है वह व्यक्ति मुझ परमेश्वर को प्राप्त होता है सबके हृदय में आत्म रूप से स्थित मुझ परमात्मा का ध्यान करता है वह आत्म रूप से मुझको प्राप्त होता है।

२५. जो भक्ति युक्त व्यक्ति अन्त काल में भी योग बल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापित करके फिर निश्चल मन से स्मरण करता है वह मुझ परमात्मा को प्राप्त होता है।

२६. जो व्यक्ति अपने मन को वश में करके, प्राण को मस्तिष्क में स्थापित करके परमात्मा सम्बन्धी योग धारणा में स्थिति होकर जो ॐ इस एकाक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और साथ ही उसके अर्थ स्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्यागता है वह परम शांति को प्राप्त होता है।

२७. मैं ही सब भूतों के ह्रदय में स्थित सबका आत्मा हूँ। तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि मध्य और अन्त मैं ही हूँ। मैं ही इस सम्पूर्ण जगत को अपनी योग शक्ति के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ। मैं ही सम्पूर्ण जगत और जगत के सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति का कारण हूँ ऐसा जान कर जो व्यक्ति श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन करता है वह मुझको ही प्राप्त होता है।

२८. जो व्यक्ति मेरे ही लिए सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को करता है, जो मेरे ही परायण है, मेरा ही भक्त है और जो आसक्ति रहित होकर सम्पूर्ण भुत प्राणियों में बैर भाव से रहित है, वह अनन्य भक्ति युक्त पुरूष मुझ को ही प्राप्त होता है।

३०. मेरी महत् ब्रह्म रूप मूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतों की योनि है अर्थात् गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतन समुदाय रूप गर्भ का स्थापन करता हूँ। इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर धारी प्राणियों की प्रकृति तो सबकी माता है और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूँ। इस प्रकार मुझको जानने वाला व्यक्ति मुझको प्राप्त होता है।

३१. समस्त देहों में वह सनातन जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है। मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों के ह्रदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ। मैं ही साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमन्ता, सबका धारण पोषण करने वाला होने से भर्त्ता, जीव रूप से भोक्ता, ब्रह्मा आदि का स्वामी होने से महेश्वर हूँ। जो व्यक्ति ऐसा मुझे जानता है वह मुझको प्राप्त होता है।

३२. जो व्यक्ति सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझ में त्यागकर केवल एक मुझ सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जाता है उसको मैं सम्पूर्ण पापों से मुक्त करके अपने में मिला लेता हूँ।

३३. यदि कोई व्यक्ति अतिशय दुराचारी भी क्यों न हो स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पाप योनि चाण्डालादि कोई भी क्यों न हो यदि वह अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मेरी शरण में आ जाता है, मुझको ही भजता है। मैं उसको भी परम गति प्रदान करता हूँ।

३४. जो व्यक्ति मुझ ईश्वर में परम प्रेम करके इस परम रहस्य युक्त ह्रदय रूप मेरे गीता शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा वह भी मुझको ही प्राप्त होता इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस व्यक्ति से बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई नहीं है।

३५. यह संसार ही कुरुक्षेत्र व धर्म क्षेत्र है इसमें आसुरी और दैवी प्रकृति ही कौरव पाण्डवों की सेना मानो। इन्हीं में जीवात्माओं का जीवन संग्राम चलता है अर्जुन और दुर्योधन जैसे स्वभाव वालों के चुनाव के लिए भगवान श्री कृष्ण अपने को दो भागों में विभाजित किए हुए हैं। एक तरफ हरि का जग तथा दूसरी तरफ जगदात्मा परमात्मा श्री कृष्ण, जो व्यक्ति अपने शरीर रूपी रथ पर भी कृष्ण भगवान को बिठा लेता है वही जीवन संग्राम में विजय प्राप्त कर भगवान को प्राप्त हो जाता है। संसार को चाहने वाला भगवान को नहीं चाहता है। भगवान को चाहने वाले को भगवान और भगवान का संसार बिना चाहे मिल जाता है।

३६. पूरी गीता में मुख्यत: चार उपदेश हैं १. संसार में शरीर से स्वधर्म का (आत्म) धर्म का पालन करो। देह धर्म नही है वह परधर्म है। २. कर्म को छोड़ो नहीं कर्म को करो लेकिन कर्म फल का त्याग करो। कर्म में ही तेरा अधिकार है फल में नहीं। ३. अपने को कर्त्ता मत मानो आत्म शक्ति के द्वारा प्रकृति के द्वारा कर्म होते हैं। ४. अन्त में सब कुछ छोड़कर मेरी शरणगत हो जाओ। संसार की शरण से बन्धन और मेरी शरण से मुक्ति होती है।

३७. प्रत्येक व्यक्ति को मोह सन्देह और भ्रम के कारण ही अपने आत्म स्वरूप की एवं ईश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप की विस्मृति हो गई है। शरीर के असत्य, अनित्य एवं आत्मा परमात्मा के सत्य स्वरूप में किसी प्रकार का संशय नहीं होना चाहिए। मोह नष्ट होते ही उसे अपने अविनाशी स्वरूप की तथा परमात्मा के स्वरूप ज्ञान की स्मृति हो जाती है। तब कोई सन्देह नहीं रहता। यह सब भगवान की कृपा से होता है। परमात्मा का अंश आत्मा है इसकी जो विस्मृति है वही अज्ञान है इस अज्ञान से ही परमात्मा से जीव विमुख हो जाता है। मैं शरीर नहीं अविनाशी आत्मा हूँ ऐसी स्मृति जब होती है तब अपने स्वरूप में स्थिरता हो जाती है।

३८. जो व्यक्ति इस धर्म मय हम दोनों के संवादरूप गीता शास्त्र को नित्य पढ़ेगा उसके द्वारा भी मैं ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊँगा। ऐसा मेरा मत है और जो व्यक्ति श्रद्धायुक्त होकर मेरी गीता का श्रवण करेगा वह व्यक्ति भी सब पापों से मुक्त होकर श्रेष्ठ लोगों को प्राप्त होगा।

***

कुशल विद्वानों के द्वारा भी उपदेश किया हुआ ज्ञान व्यर्थ है, यदि उससे कर्तव्य का ज्ञान न हुआ अथवा ज्ञान होने पर भी उसका अनुष्ठान न हुआ।

—महात्मा विदुर

गुरु-तत्व की प्रामाणिकता

ले. डा० स्वामी केशवाचार्य, चान्दोद (बड़ौदा)

इस परिवर्तनशील जगत् में यह मनुजदेह परमात्मा का बनाया हुआ एक नूतन गृह है। घर में जैसे बहुत से द्वार होते हैं, वैसे ही इस देहगेह में नव द्वार है। दो नेत्र, दो नासिका के छिद्र, दो कान, मुख, गुदा और मूत्रेन्द्रिय। श्रुति भी इस प्रकार ही कह रही है। यथा–

''नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः''।।

जैसे घर में खम्भे होते हैं वैसे ही शरीर में नालियाँ रुपी स्तम्भ हैं। घर को बनाने में जैसे ईंट, चूना और पत्थरों से काम लिया जाता है, वैस ही देह रुपी घर में रुधिर, माँस, हड्डी, मज्जा रुपी जल, चूना और ईंटों से काम लिया गया है घर को बनाने के लिए जैसे अस्तरकारी की जाती है वैसे ही देह गेह के ऊपर चर्मरूप अस्तरकारी की गयी है। यह भवन बन कर तैयार हो गया है।

यह साफ-साफ दृष्टिगोचर हो रहा है छोटे से छोटे शिल्पकार से लेकर बड़े से बड़े इन्जीनियर तक का कोई न कोई उपदेष्टा, गुरु, उस्ताद, टीचर, उपाध्याय या आचार्य अवश्य है। जिसकी अनुमति से यह शरीर भवन बना है। जिसका पवित्र नाम लेने से अन्तःकरण में एक अद्‌भुत प्रकार का उल्लास होता है जिसकी वेद, पुराण, इतिहास भी अत्यन्त प्रशंसा करते हैं वह क्या है ? वही तो ''गुरु-तत्व'' है।

गुरु-तत्व इतना गहन विषय है कि इसकी मीमांसा में बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों की प्रतिभा भी कुण्ठित हो जाती है। इस कलिकाल के भँवर में भ्रमित हुए इस क्षुद्र जन्तु की तो **''उद्वाहुरिव वामनः''** की-सी गति हो रही है। तथापि उदधि में नौकारुढ़ जन भी इतस्ततः भ्रमण करने की चेष्टा करता ही है।

'गृ शब्दे' क्रयादि, और 'गृनिगरणे' तुदादि गण की धातु को 'कृग्रोरुच्च' इस उणादि-सूत्र से 'कु' प्रत्यय और उकारान्ता देश होने पर 'उरण् रपरः' इससे उरादेशानन्तर 'कृत्तद्धित समासाश्च इससे प्रातिपदिक संज्ञा के पश्चात् 'सु' विभक्ति आने पर गुरु शब्द सिद्ध होता है।

गृणाति, उपदिशति धर्ममिति गुरुः।
गिरित्य ज्ञानमिति गुरुः।
यद्वा गीर्यते स्तूयते देवगन्धर्वा दिभिरिति गुरुः।

भावार्थ यह कि 'धर्म का जो उपदेश दें अज्ञान रुपी तम का विनाश कर ज्ञान रूपी ज्योति से जो प्रकाश करें, देव, गन्धर्वादि से जो स्तुत हों, उन्हीं साक्षात् देव की संज्ञा गुरु है।

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसार संग्रह में भगवान् श्री शंकराचार्य जी भी स्वकीय स्वर्णाक्षरों द्वारा 'गुरु' शब्द का लक्षण अंकित करते हैं।–

अविद्याहृदयग्रन्थिबन्ध मोक्षो यतो भवेत्।
तमेव गुरुरित्याहुर्गुरुशब्देन योगिनः।। २५६।।

श्री मनु महाराज कहते हैं-

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि
सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते।। (२/१४२)

परन्तु तान्त्रिक महाशय 'गुरु' शब्द के प्रत्येक वर्ण का इस रीति से वर्णन करते हैं। उनके मत से गकार का अर्थ सिद्धि दाता, रेफ का अर्थ पापनाशक और उकार का अर्थ शम्भु है। अर्थात् जो सिद्धि दे सकते हैं, पापों के विनाश करने में जिनकी क्षमता है, और जो मंगलकर्ता हैं, उन्हीं को गुरु कहते हैं।

अथवा गकार का अर्थ, रेफ का अर्थ तत्व प्रकाशक और उकार का अर्थ शिवतादात्म्यप्रद है। अर्थात् जो तत्व ज्ञान को प्रगट कर शिव के साथ अभिन्न करा देते हैं उन्हें ही गुरु-शब्द से गुम्फित किया गया है।

हमारे शास्त्र महोदधि भगवान वेद व्यास जी ने कूर्म पुराण में दस प्रकार के गुरुओं का उल्लेख किया है।

उपाध्यायःपिता माता ज्येष्ठो भ्राता महीपतिः।
मातुलः श्वसुरश्चैव मातामहपितामहौ।
वर्ण ज्येष्ठः पितृव्यश्च सर्वे ते गुरवः स्मृताः।।

(कौर्म० उत्तरा० १२/२६)

उपाध्याय, पिता, माता, बड़ा भाई, राजा, मामा, श्वसुर, नाना, बाबा, वर्ण ज्येष्ठ (ब्राह्मण)

'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः रिति वचनात्'

चाचा व ताऊ ये दस गुरु कहे गये हैं।

उपेत्य अधीयतेऽस्मादित्युपाध्यायः।

जो आचारांग, सूत्र, कृतादि एकादश और उत्पाद, अग्रायणी आदि चतुर्दश पूर्वक पाठी हों, जो स्वयं पढ़ते हैं और अन्य मुनियों को पढ़ाते हैं, उन्हें उपाध्याय कहते हैं। उपाध्याय और आचार्य में अन्तर यह है-

एक देशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थ मुपाध्यायः स उच्यते।।(मनु० २/१४१)

जो व्यक्ति अपनी जीविका के निर्वाह के लिए वेद का कोई अंश या वेदांग पढ़ाता है वह उपाध्याय कहलाता है। परन्तु उपाध्याय आचार्य से छोटा होता है, क्यों कि कल्प एवं उपनिषद् के साथ सम्पूर्ण वेद पढ़ाना आचार्य का काम है। इदानी थोड़े शब्दों में 'आचार्य' शब्द की विवेचना

करते हैं। लिंग पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में ऐसा दिग्दर्शन कराया है-

यस्मात् पुरुषादयं माणवो धर्मानाचिनोति शिक्षते स आचार्यः।

स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यपि।

आचिनोति च शास्त्राणि आचार्यस्तेन चोच्यते।।

(ब्रह्माण्ड० पूर्व० ३२/३२)

जो मुनियों के संघ से अधिपति हों और संघ के मुनियों को दीक्षा (शिक्षा), प्रायश्चित (दण्डादि) देते हों, उन तप धर्मकर्माचारादि गुणों के धारण करने वाले को आचार्य शब्द से व्यवहृत करते हैं।

अनेक गुरुओं के वर्ग में महर्षि वशिष्ठ जी ने माता पिता को ही प्रथम श्रेणी का टिकट देकर आराम कुर्सी देने की कृपा की। यथा-

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।

सहस्त्रं तु पित्रिन्माता गौरवेणातिरिच्यते।। (अ० ३)

इस सृष्टि में माता से अधिक कष्ट सहने वाला कोई दृष्टिगोचर नहीं होता जिसने हमें नव मास गर्भ में धारण किया, जब पैदा हुए तब किस लाड् प्यार से हमारी सेवा की, हमारे तनिक से रोगी होने पर रात्रि जागते-जागते बितायी। स्वयं कष्ट सहे, पर हमें कष्ट नहीं होने दिया। उसके इस कृत्य से हम जन्मजन्मान्तर उऋण नहीं हो सकते हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है-

माता पुत्रस्य भूयांसि कर्मण्यारभते तस्यां शुश्रुषा नित्या पतितायामपि।।

(१/१०/२८/९)

"नास्ति मातृ समोदेवः"।

माता-पिता के प्रसन्न रहने से सब देवता प्रफुल्लित रहते हैं, इसे धर्म शास्त्र कितने उच्च स्वर से प्रतिबोधित कर रहा है-

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।

पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः।।

पितयाचार्य वच्छुश्रुषा।

नास्ति तात समो गुरुः।

नास्ति मातुः परो गुरुः।

माता पृथिव्या मूर्तिस्तु।

मातृदेवो भव। पितृ देवो भव।।

यद्यपि इन प्रमाणों से माता-पिता को उच्च माना गया है तथापि-

शरीरमेव माता पितरौ जनयतः। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १/१/१/१५)

माता पितरौ शरीर मेव काष्ठकुंड्यादिसमं जनयतः।
आचार्यस्तु सर्वपुरुषार्थक्षमं रूपं जनयति।

अतः महर्षि गौतम ने उपदेश किया है–

आचार्यः श्रेष्ठो गुरुणाम्। (गौ.ध.स. १/३/५६)

अतः आचार्य ही श्रेष्ठ हैं ऐसा निष्कर्ष निकला।

महाभारत में भी कहा गया है–

गुरुर्गरीवान् मातृतः पितृतश्चेति में मतिः। (शान्ति १०८/१७)

माता-पिता से गुरु का (दर्जा) स्थान ऊँचा है। इसकी यदि और खोज करनी हो तो श्री पाणिनि महाराज के निम्नलिखित सूत्र का अवलोकन करने से ज्ञात होता है–

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् (४/३/७७)

शैषिक प्रकरण में योनि सम्बन्ध से विद्या सम्बन्ध को प्रथम श्रेणी में बैठाया गया है अतः विदित होता है कि विद्या सम्बन्ध योनि सम्बन्ध से मान्य है। ब्रह्मज्ञानी आचार्य को वेद भगवान् कितना सम्मान देते हैं इस बात का यदि पता लगाना हो तो शुक्ल यजुर्वेद की संहिता का अवलोकन करना होगा–

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान्
गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य
यस्तानि वेद स पितुः पिता सत्।। (३२/९)

'गन्धर्व (वेद विद्या का धारण करने वाला) विद्वान (ब्रह्मवेत्ता) उस अमृत ब्रह्म का प्रवचन-खोल-खोल कर व्याख्यान करे, जो ब्रह्म गुहा (बुद्धि या ब्रह्माण्ड) में स्थित है और जो सत् तथा आनन्दमय है। उसके तीन पद गुहा में निगूढ़ (अत्यन्त गुप्त) हैं। उन पदों को जो जान गया वह पिता का भी पिता (गुरु) है'।

ब्रह्म के तीन पदों का वर्णन करना यद्यपि इस लेख का उद्देश्य नहीं है– वेद में कई स्थानों पर ब्रह्म को पदों का और विष्णु के पाद-विक्रम का सविस्तार वर्णन है, तथापि हम इतना ही यही संकेत कर सकते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय को ब्रह्म के तीन पद कहा जाता है। अथवा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति का वर्णन किया गया है। विशेष बात जिसके लिए यह मन्त्र उद्धृत किया गया है, वह यह है कि ब्रह्म ज्ञानी महात्मा को पिता का गुरु कहा गया है। पिता का गुरु कहने से दो अर्थ निकलते हैं और दोनों अर्थों की दृष्टि से ब्रह्मज्ञानी पितादिकों का गुरु कहलाने का अधिकारी है। यथा–

१. अपने पितादि के भी गुरु ब्रह्म ज्ञानी का पिता यदि ब्रह्म विद्या से शून्य है अथवा आत्मज्ञान

से विमुख होकर संसारी भोगों में व्यस्त है, तो ऐसे पिता को वैराग्य का उपदेश देकर और ब्रह्मविद्या का व्याख्यान समझाकर ब्रह्मज्ञानी पुत्र उसका कल्याण कर सकता है। ऐसा करने से पिता शिष्य और पुत्र गुरु होगा। शिष्य-गुरु का सम्बन्ध पिता-पुत्र समान है। अतः ब्रह्म ज्ञानी पुत्र अपने पिता, चाचा, ताऊ, मामा, नाना, नानी, चाची ताई आदि बड़े बूढ़ों को इस नाते "पुत्र" कह सकता है, और 'सुनो वत्स' इस प्रकार कहने का अधिकारी है। यह ब्रह्म विद्या का प्रताप है जिससे पुत्र पिता का भी पिता (गुरु) बन जाता है। यदि पाठकों को सन्देह हो तो एक छोटा सा प्रमाण दूँ। इससे पता चल जाएगा कि ब्रह्म विद्या का उपदेश करने वाला विद्वान व्यक्ति सच्चा गुरु क्योंकर कहला सकता है सामवेद के ताण्डमहा ब्राह्मण में एक प्राचीन ऐतिहासिक घटना का वर्णन किया गया है। जिसमें आंगिरस ऋषि ने अपने पिताओं को पुत्र कह कर पुकारा था। कथा निम्न प्रकार है-

शिशुर्वै आंगिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत्। स अध्यापयन् पितृन् पुत्र केत्यामन्त्रयत्, तं पितरो ब्रुवन्न धर्म करोषि यो नः पितृन् सतः पुत्रकेत्यामन्त्रयसे सोऽब्रवीदहं वाव पितायो मन्त्रकृतस्मीति। ते देवेष्वापृच्छन्त। ते देवा अब्रुवन्नेष वाव पिता यो मन्त्रकृदिति। तद्वै सोदजयत्।।

(ताण्डय्र महाब्राह्मण १३/३/२४)

अंगिरा का पुत्र छोटी आयु में ही ऐसा विद्वान् हो गया कि वह मन्त्रद्रष्टा ऋषियों से आगे बढ़ गया। साथ ही वेद का बड़ा रोचक और वैज्ञानिक व्याख्यान करने में प्रसिद्ध हो गया। उसने वेद का व्याख्यान करते हुए अपने पितादि बड़े वृद्ध जनों को 'पुत्रों' कह कर सम्बोधन कर दिया। पितादि वृद्ध जनों को यह दुर्व्यवहार बहुत बुरा प्रतीत हुआ और सहन न कर वे कहने लगे- तू वेदवेत्ता होकर अधर्म करता है। तूने पितादि को पुत्र कहकर सम्बोधन किया यह न्याय संगत नहीं है। यह सुनकर अंगिरा ने कहा "मैं निश्चय से तुम्हारा गुरु हूँ" क्योंकि मैं मन्त्रों का द्रष्टा और व्याख्याता हूँ"। परन्तु वृद्धजनों को इससे सन्तोष नहीं हुआ, वे इसका ठीक-ठीक निर्णय करने के लिए देवताओं के पास गये और सब वृत्तान्त कह व्यवस्था पूछने लगे। देवों ने पूर्वापर विचार कर उत्तर दिया कि यह (आंगिरस) निश्चय से गुरु ही हैं। क्योंकि यह मन्त्रद्रष्टा वैदिक तत्व ज्ञान का प्रभावशाली व्याख्यान करने वाला है। देवों के इस फैसले से आंगिरस का पक्ष सत्य सिद्ध हो गया। और उसकी जीत हुई। यह कथानक इतना प्रसिद्ध और प्रामाणिक है कि राजर्षि मनु ने भी अपने नियमों में इसको उद्धृत किया है और कहा है कि-

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्य धीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः।। (मनु २/१५६)

दूसरा अर्थ है-दूसरों के पिता जनों का पिता (गुरु)। पूर्वोक्त युक्ति प्रमाण से यह भी सिद्ध है कि ब्रह्मज्ञानी दूसरों के वृद्धजनों का भी अपने तत्त्वज्ञान से उद्धार कर सकता है। और इसलिए उनका

भी गुरु कहलाने का अधिकारी है। एक प्रमाण इस विषय पर भी प्रकाश डाल रहा है– अथर्ववेद की विप्रलाद शाखा में स्पष्ट वर्णन किया गया है कि ब्रह्म में अत्यन्त श्रद्धा रखने वाले भारद्वाज, सत्यकाम, गार्ग्य, आश्वलायन, कात्यायन और भार्गव ये छः प्रसिद्ध तत्व ज्ञानी ऋषि एकत्र होकर बड़े ही विनीत भाव से महर्षि विप्रलाद के चरणों में उपस्थित हुए, और प्रार्थना करने लगे कि–'भगवन् ! हमें ब्रह्मज्ञान दीजिये, और हमारी शंकाओं का कृपाकर के समाधान कर दीजिये'। महर्षि ने उनकी योग्यता देखकर ब्रह्मविद्या सम्बन्धी नियमों का प्रारम्भिक उपदेश किया और कुछ दिनों बाद उनके गूढ़ प्रश्नों का भी समाधान कर दिया। उस अलौकिक व्याख्यान को सुनकर उन तत्व ज्ञानी ब्रह्म निष्ठों को जो आनन्द हुआ और ब्रह्मवेत्ता महर्षि विप्रलाद के चरणों में उनकी जो श्रद्धा उत्पन्न हुई और जिन शब्दों में उन्होंने कृतज्ञता प्रकाशित की वह इतिहास के पृष्ठों पर आज भी चमक रही है। वे स्वर्ण मय शब्द ये हैं–

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति। नमः परम ऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः। (प्रश्नोपनिषद् ६/८)

उन्होंने महर्षि की श्रद्धा पूर्वक पूजा की, और अत्यन्त प्रतिष्ठा करते हुए यह बोले कि "भगवन् ! आप हमारे सच्चे पिता (गुरु) हैं। भगवन! आपने हमको अविद्यासागर से पार कर परले पार पहुँचा दिया है। हमारा बेड़ा पार कर दिया है। और आप जैसा परम ऋषियों को हमारा नमस्कार और बारम्बार नमस्कार है।"

अविद्यान्धकार से पार लगाने वाले तत्व वेत्ता को (गुरु) मानने में भारद्वाजादि ऋषियों का प्रमाण पर्याप्त है कि ब्रह्म ज्ञानी दूसरों के पितादि का भी गुरु कहलाने का अधिकारी है।

भारत में अति प्राचीन काल से ही दीक्षा प्रणाली चली आ रही है। प्रत्येक दीक्षा में एक न एक गुरु की आवश्यकता होती ही है। अस्त्र-शस्त्र और मन्त्र दीक्षादि सभी के एक-एक गुरु होते हैं। गुरु के बिना कोई भी दीक्षा (शिक्षा) नहीं हो सकती। ऋषियों और तान्त्रिकों ने गुरु-शिष्य के विषय में नाना प्रकार के कर्तव्याकर्तव्यों का निर्णय किया है। उनकी पर्यालोचना करने से विदित होता है कि जिस समय यह देश धर्मोन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था उस समय इस देश के मनुष्य गुरु को साधारण मानव नहीं समझते थे। यह प्रमाण शिवपुराण को कैलाश संहिता में गुरु भक्ति की क्या महिमा गायी है–

यथागुरुस्तथैवेशो यथैवेशस्तथा गुरुः
पूजनीयो महाभक्त्या न भेदो विद्यतेनयोः।।

अन्यच्च–

यो गुरुः सशिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
तस्माद्धि श्री गुरोर्भक्तिभुक्तिमुक्ति प्रदायिनी।। (६/३/४२)

यह स्मरण रखना चाहिये कि कदापि गुर्वाज्ञा और गुरु द्रोह नहीं करना चाहिये। आपस्तम्बधर्म सूत्र साक्षी दे ही रहा है-

देवद्रोहं गुरुद्रोहं न कुर्यात् सर्व यत्नतः।
कृत्वा प्रमादतो विप्राः प्रणवस्यायुतं जपेत
तस्मै न द्रुह्येत कदाचन्। (१/१/१/१५)

जो गुरु द्रोह करते हैं, और गुरु को रुष्ट करते हैं उनकी आयु, लक्ष्मी, ज्ञान का नाश हो जाता है। यथा-

कर्मणा मनसा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत्।
तस्य क्रोधेन दह्यन्ते आयुः श्रीज्ञान सत्क्रियाः।।

यदि शिव रुष्ट हो जायें तो गुरु प्रसन्न कर सकते हैं और यदि किसी हेतु गुरुजी क्षुभित हो जायें तो उनको कोई भी प्रसन्न नहीं कर सकता। अतः उनको प्रसन्न रखने से हमारे सर्वकार्य सिद्ध हो जाते हैं और वे हमें बैकुण्ठ तक भेज देते हैं। भागवत् माहात्म्य में उनकी कितनी प्रशंसा की है-

चिन्ता मणिर्लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्गसम्पदम्।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम्।। (१/१८)

हमने इस लेख के प्रारम्भ में ही निवेदन किया है कि नवद्वारात्मक देह-गेह किसने रचा है। यह हमारे परम गुरु परमेश्वर सच्चिदानन्दकन्द की शिल्पकारी का एक अनोखा नमूना है। उनका कभी विस्मरण नहीं करना चाहिये। यही प्रतिष्ठा विद्या गुरु वा दीक्षा गुरु की है। उनको साधारण मनुष्य की भाँति नहीं समझना चाहिये। प्रमाण में योगशिखोपनिषद् क्या नादस्वर से पुकार रहा है। यथा-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
न गुरोरधिकः कश्चित् त्रिषुलेकेषु विद्यते।।

इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि इस भारत देश में हमारे पूर्वज बड़े-बड़े धुरन्धर ब्रह्मवेत्ता तत्व द्रष्टा होते थे। और उन्हीं से यह देश सर्वोन्नत गिना जाता था। इसका हेतु यही है कि उनके अन्दर गुरु भाव, गुरु भक्ति, गुरु श्रद्धा और गुरु स्नेह प्रचुर मात्रा में विद्यमान था। उसी गुरु (आचार्य) परम्परा में अनन्त श्री विभूषित प्रातः स्मरणीय श्री रामलाल जी महाराज (महाप्रभु जी) एवं अनन्त श्री विभूषित योगिराज विश्ववन्द्य सन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज (सद्गुरुदेव) जी हैं। जिनके प्रति समग्र पृथ्वी समर्पित हैं। श्री सद्गुरुदेव जी की महिमा कहाँ तक लिखा जाय। क्योंकि उनकी महिमा इतनी अनन्त है कि साक्षात् सरस्वती भी वर्णन नहीं कर सकती। हमने जो कुछ भी लिखने का प्रयास किया है वह केवल सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपा एवं अनुकम्पा से। बल्कि हम तो यह जानते हैं कि श्री सद्गुरुदेव ने ही लिखा है-

"नास्ति तत्वं गुरोः परम्"।। अस्तु।

***

योग-मृत्यु से अमृत जीवन

प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा, दिल्ली

वीतराग सिद्धपुरुषों को अपने चित्त का आलम्बन बना लेने से उनकी-कृपा से साधक में शक्तिपात की क्रियायें स्वतः प्रारम्भ हो जाती हैं। ये क्रियायें मल आवरण और विक्षेप को हटाने के उद्देश्य से महाशक्ति स्वतः कराती है। जो कार्य मजबूरी में करना पड़ता है उससे दुःख होता है। जिसको स्वेच्छा से किया जाय उसमें आनन्द आता है। प्रत्येक व्यक्ति को सुख-दुःख के द्वन्द्व में, मान-अपमान, हानि-लाभ, हर्ष-शोक और आधि-व्याधि की अग्नि में संतप्त होना ही पड़ता है। उन दुःखों के संस्कार भी स्मृति में घनीभूत होकर परिणाम में दुःख ही दिया करते हैं। गुण वृत्ति विरोध का दुःख तो प्रतिक्षण हर प्राणी अनुभव करता ही रहता है। सत-रज-तम गुणों के अनुसार गुणात्मक प्रभाव से प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से स्वभाव में भिन्न हुआ करता है। उनकी प्रवृत्तियाँ भी अपने अलग ढंग की होती हैं। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, भाई-भाई आदि सभी गुणवृत्ति के विरोध से अपने मन में हर समय दुःख का अनुभव करते रहते हैं। किन्तु योग मार्ग का वरण कर लेने पर यह जो मजबूरी थी वह स्वभाविक जीवन बन जाता है जिससे परिस्थितियों की प्रतिकूलतायें दुःखदायी न होकर सुखदायी लगती हैं। भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं-

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणाऽपि विचाल्यते।
तं विद्यात् दुःख संयोग वियोग योग संज्ञितम्।।

अर्थात् दुःखों के संयोग का वियोग करने वाली स्थिति को योगारूढ़ कहा जाता है। इस स्थिति में बड़े से बड़े कष्ट से भी साधक विचलित नहीं होता। जब तक इन्द्रियाँ और मन के सुख का अनुभूति स्तर चित्त का रहेगा तब तक दुःख से विचलित होना ही पड़ेगा। जब सुषुम्ना मार्ग से धारण-ध्यान और समाधि का मार्ग मिल जाता है तब जो दुःख के कारण थे वे सुख देने वाले बन जाते हैं। भूख दुःखदायी है किन्तु हम अपनी इच्छा से व्रत करने लगे तो आनन्द आने लगता है। द्वन्द्वों का सामना करने पर दुःख दायी लगता है किन्तु आत्मशुद्धि के लिए यदि हम समत्व में स्थित होने का-अभ्यास करने लग जायें तो निन्दा, प्रशंसा, गाली तथा सुख-दुःख एक जैसे लगने लगते हैं।

मृत्यु का अनुभव दुःख कारक होता है। किन्तु योग द्वारा मृत्यु द्वारा होने वाली कार्यों को स्वयं कर लिया जाय तो दुःख की जगह सुख हो जाता है मरने के पहले अपनी मौत खुद मरकर देखने की हिम्मत सद्गुरु की भक्ति के बिना नहीं आती। यह मौत खुदकशी की मौत नहीं है। अपितु पूर्ण

होश की मृत्यु है, कर्तव्य अभिमान की मृत्यु है। जिस प्रकार मरे हुए शरीर को मान-अपमान, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, भूख-प्यास का अनुभव नहीं हुआ करता उसी प्रकार ध्यान और समाधि में लक्ष्य से चित्तवृत्ति का तदाकार होने से मृत्यु जैसी अवस्था (अर्थात् द्वन्द्वों से दुःख नहीं होना) स्वतः आ जाती है। प्रश्नोपनिषद् में इस प्रकार की मृत्यु जैसी दशा का उल्लेख मिलता है। योग बीज तथा गोरखनाथ अन्यान्य ग्रन्थों में भी यत्र तत्र इस प्रकार के वचन हैं-

'हठंन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः।' अर्थात् प्राणायाम बन्ध मुद्रा आदि के अभ्यास से जिसने अपनी वासनाओं को तथा अहंकार को मार लिया है, उसको मृत्यु क्या मारेगी ? मरे हुए को फिर मृत्यु नहीं मारती। आत्मा तो अजर अमर है। मृत्यु उसे कभी नहीं मारती। मरता तो शरीर है और उसमें रहने वाली कामनायें मरा करती हैं। यदि उन्हें साधना द्वारा स्वयं ही नष्ट कर लिया जाय तो दुःख के स्थान पर आनन्द हो जाता है। मृत्यु से इनका नाश होने पर स्वयं को तथा परिवारजनों को भी दुःख ही दुःख हुआ करता है। किन्तु योगविधि से देहाभिमान को नष्ट करने से सर्वत्र आनन्द हो जाता है। प्रश्नोपनिषद् में इस प्रकार मरने की विधि तृतीय अध्याय के नवें मंत्र में बतायी गयी है-

'तेजो ह वै उदानः। तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैः मनसि सम्पद्यमानैः। यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति। प्राणस्ते असायुक्तः सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति।'

तेज ही निश्चित रूप से उदान प्राण है। शान्त हुए तेज को पुनः उत्पन्न करने के लिए इन्द्रियों को विषयों से हटाकर मन में लगा देने से- चित्त एकाग्र हो जाता है। एकाग्र चित्त के द्वारा वह प्राण वापिस आ जाता है। वह प्राण तेज से युक्त होकर आत्मा के सहित मनुष्य को यथा संकल्पित लोक को लेकर अभीष्ट सिद्ध कर देता है। प्रकृति द्वारा आयी हुई मृत्यु कर्मानुसार जीव को तत्तद् लोकों में ले जाती है। किन्तु योग साधना द्वारा एकाग्रचित्त से क्रिया योग के अभ्यास द्वारा स्वेच्छा से योगी इन्द्रियों का लय मन में, मन का बुद्धि में, बुद्धि का आत्मा में लय करके सुषुम्ना वाही प्राणों के बल से संयमसिद्ध करके यथा संकल्पित सामर्थ्य को पाकर प्रकृति को अपने वश में कर लेता है। एकाग्र चित्त से प्राण शक्ति का विस्तार होता है। बाह्य प्राण के रूप में आदित्य है जिसका सम्बन्ध हमारे चाक्षुषप्राण से है। पृथ्वी की देवता रूप शक्ति हमारे आन्तरिक अपान नामक प्राण से है। आकाश का सम्बन्ध समान से तथा वायु का व्यान से और अग्नि का सम्बन्ध हमारे अन्दर की उद्दान प्राणशक्ति से है। निरुद्ध चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाने पर योगी को प्रकृति के भण्डार से पाँचों प्रकार की ये शक्तियाँ मिलने लगती हैं। शक्तियों का आकर्षण एकाग्रता द्वारा होता है।

* * *

अद्भुत गुरुभक्ति

अंशुमान देव मालवीय, वाराणसी

जिस प्रसंग का वर्णन मैं करने जा रहा हूँ, इस प्रसंग को घटित हुए करीब पाँच हजार वर्ष हो रहे हैं। प्रसंग द्रोणाचार्य जो पाँडवों व कौरवों के गुरु थे उनका है, जिनके नाम की चर्चा सुनकर एक भील बालक जिसका नाम एकलव्य था; उसकी बहुत इच्छा हुई कि वह गुरु द्रोणाचार्य से ही शस्त्र विद्या प्राप्त करे। जब वह अपने पिता के साथ गुरु द्रोणाचार्य के पास पहुँचा और बोला कि मैं एक भील पुत्र हूँ तो गुरु द्रोणाचार्य ने अपनी विवशता बताते हुए कहा कि मैं सिर्फ क्षत्रिय बालकों को ही यह दे सकता हूँ। गुरु द्रोणाचार्य ने शिक्षा देने से इन्कार कर दिया। इसके पश्चात् एकलव्य ने मन में ही गुरु द्रोणाचार्य को अपना गुरु मानकर उनकी मिट्टी की एक मूर्ति स्थापित की और अपने मन को एकाग्र कर उस मूर्ति के सामने धनुर्विद्या का अभ्यास करना आरम्भ कर दिया।

आखिर वह दिन आ ही गया जब वह धनुर्विद्या में पूर्ण हो गया। जब गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों और एक कुत्ते के साथ जा रहे थे। कुत्ता बहुत तेजी से भौंकने लगा और अचानक उसकी भौंकने की आवाज बन्द हो गयी जब गुरु द्रोणाचार्य ने कुत्ते की ओर देखा तो पता चला की कुत्ते के मुँह को किसी ने बाणों से भर दिया है। गुरु द्रोणाचार्य जब थोड़ा आगे बढ़े तो देखा की एक बालक एक मूर्ति के सामने धनुष बाण का अभ्यास कर रहा है। तब गुरु द्रोणाचार्य उसकी लगन और अभ्यास को देखकर समझ गये कि इसी ने इस कुत्ते के मुँह में बाण भर दिया है। तब गुरु द्रोणाचार्य, उस बालक से मिलने गये और पूछा कि वत्स ! तुम्हारा नाम क्या है ? उस बालक ने उत्तर दिया कि मेरा नाम एकलव्य है। तब गुरु द्रोणाचार्य ने पूछा कि तुम्हारे गुरु कौन हैं ? तब भील पुत्र एकलव्य ने उत्तर दिया गुरुदेव आप ही मेरे गुरु हैं और मैं वही भील पुत्र हूँ, जिसको आपने धनुर्विद्या देने से इन्कार कर दिया था। मैंने आपकी मूर्ति बनाकर ही आपकी पूजा अर्चना कर अपने मन को एकाग्र कर सम्पूर्ण विद्यायें सीख ली। तब गुरु द्रोणाचार्य ने कहा वत्स ! मुझे गुरु दक्षिणा दोगे ? तब एकलव्य ने उत्तर दिया, मैं आपको अवश्य दक्षिणा दूँगा जो आप माँगेंगे। तब गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य से उसके एक अँगूठे को गुरु दक्षिणा में माँगा शिष्य एकलव्य ने ऐसा ही किया और अपना एक अंगूठा काटकर गुरु के चरणों में समर्पित कर दिया।

इस महान गुरु भक्ति से हमें यह सीख लेनी चाहिये कि गुरु के प्रति ऐसा कर्तव्य सभी शिष्यों का होना चाहिये, क्योंकि गुरु की सभी आज्ञाओं में शिष्य का हित छिपा हुआ है। सद्गुरु देव भगवान के स्मरण मात्र से ही दुनियाँ की सभी वस्तुयें मनुष्य को मिल जाती हैं। जो मनुष्य सद्गुरु देव भगवान की चरण-शरण में चला जाता है और, इन्हीं के बताये सद्मार्ग पर चलता है, उसकी सारी दुनियाँ गुलाम हो जाती है। मनुष्य को यह शरीर बड़े ही भाग्य एवं पुण्यों के संचय से मिला है और अगर इस शरीर को सद्गुरु देव भगवान के चरणों में न लगाया तो यह जीवन असफल एवं निरर्थक हो जायेगा। मनुष्य को यह जीवन अथक प्रयत्न एवं सत्कर्म करने को मिला है। एवं सद्गुरु देव भगवान के चरणों में लगे रहने के लिये हुआ है न कि विषय भोगने के लिये।

आप सभी सुयोग्य पाठकों से मेरा यह नम्र निवेदन है कि लेख की त्रुटियों को ध्यान में न रखकर इसके पवित्र भावों को ग्रहण करने की कृपा करें। एकमात्र सद्गुरु देव भगवान को ही अराध्य मानकर इन्हीं की आरती पूजन एवं कृपा का वर्णन सदैव करते रहें। जिससे हम सब शिष्यों पर उनकी कृपा वर्षा सदैव होती रहें। जय गुरुदेव ! ※※※

ब्राह्मीघृत आदि स्नेह पाकों की निर्माण-विधि तथा

-विविध रोगों में उनका उपचार-

(गरूड़ पुराण से साभार)

धन्वन्तरिजी ने कहा-हे सुश्रुत ! अब मैं रोगों को दूर करने वाले घृत और तैलादि पदार्थों के विषय में बताऊँगा उसे आप सुनें।

शंखपुष्पी, वच, सोमा, ब्राह्मी, ब्रह्मसुवर्चला, अभया (हरीतकी) गुडूची (गिलोय), अटरूषक (अडूसा) तथा वागुजी (वकुची) नामक इन औषधियों के रस को एक-एक अक्ष अर्थात् दो-दो तोला लेकर उनसे एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर घृत का पाक सिद्ध करना चाहिये। उसमें एक प्रस्थ कण्टकारी का रस, एक ही प्रस्थ दूध का मिश्रण भी करना चाहिए। इस घृतपाक का नाम **ब्राह्मीघृत** है। यह स्मरण और मेधा-शक्ति का अभिवर्धक होता है।

त्रिफला, चित्रक, बला, निर्गुण्डी (सिन्धुवार) नीम वासक (अडूसा), पुनर्नवा, गुडूची बृहती और शतावरी नामक इन औषधियों के रस से सिद्ध घृत पाक सभी रोगों का विनाशक है।

बला के रस से बने हुए क्वाथ में आधा आढ़क अर्थात दो सेर तिल का तेल पकाना चाहिए। इस क्वाथ पाक के साथ मुलेठी, मजीठ, चन्दन, नीलकमल, लालकमल, छोटी इलायची, पिप्पली, कुष्ट दारचीनी, बड़ी एला (कपित्थ की छाल), अगरू, केसर, अश्वगन्धा तथा जीवन्ती का कल्क और एक आढ़क अर्थात् चार सेर दूध मिलाना चाहिए। इस पाक को अग्नि की धीमी आँच में सिद्ध करके एक रजतपात्र में रखना चाहिए। यह तैल पाक समस्त वात तथा धातुरोगों का नाशक है। इस तैल पाक के सेवन से कफ़जन्य क्षयरोग भी विनष्ट हो जाता है इसका नाम **राजवल्लभ** है।

एक प्रस्थ शतावरी का रस, एक प्रस्थ दूध एक-एक कर्ष शतपुष्पी, देवदारू, जटामांसी, शिलाजीत, बला, चन्दन, तगर, कुष्ट, मैनसिल और माल कंगनी नामक औषधियों का रस लेकर एक प्रस्थ घृत को अग्नि पर सिद्ध करना चाहिए। इस घृत पाक के प्रयोग से प्राणियों का लंगड़ापन, बौना पन लुंजता, बधिरता, व्यंग दोष और कुष्ठरोग विनष्ट हो जाता है। वायु दोष के कारण जिनका शरीर दुर्बल हो गया है, जो मैथुन में अशक्त हैं, वृद्धावस्था के कारण जो जर्जर शरीर वाले हो गये हैं, आध्मान नामक रोग के कुप्रभाव से जिनके मुख शुष्क हो गये हैं। उनके उन सभी विकारों का यह घृत पदार्थ विनाशक है। जिन प्राणियों के चर्म, शिरा और स्नायु तन्त्रिकाओं में विकृत वायु समूह प्रविष्ट होकर रोग का रूप धारण कर चुका है। वह सब इस सिद्ध तेल के सेवन से नष्ट हो जाता है। इस तेल का नाम नारायण तेल है। इस रोग विनाशक तेल की सिद्धि का विधान स्वयं भगवान् विष्णु ने बताया था, इसलिये इस सिद्ध तेल का नाम उन्हीं के नाम पर पड़ा है। इन्हीं औषधियों से पृथक-पृथक अथवा मिश्रण रूप में घृत एवं तैलपाक बनाना चाहिए।

शतावरी, गुडूची, चित्रक, बिजौरा नींबू का रस अथवा कण्टकारी के रसादि से समन्वित निर्गुण्डी का रस या पुनर्नवा और चमेली अथवा त्रिफला के साथ अडूसा या ब्राह्मी, एरण्ड, भृंगराज

कुष्ट, मूसली, दशमूल और खदिर की घिसकर बनायी गयी वटी वटिका मोदक या चूर्ण सभी रोगों को दूर करने वाला है। घृत, मधु, जल, शर्करा, गुड़, नमक तथा सौंठ, काली मिर्च अथवा पिप्पली के साथ सेवन करने से सभी रोगों में यथोचित लाभ होता है। इन औषधियों का योग सर्व-रोग विनाशक है।

चित्रक, मन्दार, और निसोत्त अथवा अजवाइन तथा कनेर या सुधा (गुडूची) बाला (चमेली), गणिका (गनियारी) सप्तपर्णी (छितवन), सुवर्चिका (पित्तपापड़ा) और ज्योतिष्मती (मालू कंगनी) नामकी औषधियों को एकत्र करके विद्वान को उनका तैल पाक सिद्ध करना चाहिए। इस योग से सिद्ध तेल का प्रयोग भंगदर रोग में करना चाहिए। शोधन, रोपण तथा सर्ववर्ण कारक चित्रकादिक जो महातेल हैं, वे सभी प्रकार के रोगों का निवारण करते हैं।

अजमोदा, सिन्दूर, हरताल, हल्दी दारु हल्दी, यावक्षार, छज्जी, समुद्रफेन, अदरक, सरलद्रव, इन्द्रायण, अपामार्ग, केला तथा तिन्दुकको समान भाग मे लेकर सरसों का तेल बकरी के मूल तथा गो दुग्ध को मिलाकर मन्द-मन्द अग्नि की आँच पर पाक करना चाहिए। इस सिद्ध तैल पाक का नाम अजमोदादि तेल है। यह गण्डमाला नामक रोग को दूर करता है। विद्वान व्यक्ति को सबसे पहले इस गण्डमाला नामक रोग में होने वाली फुंसियों को पकाना चाहिए। तद्नन्तर उनका शोधन इसके इसी अजमोदादि तेल से घोंवा को भरते हुए उसमें कोमलता लाने का प्रयास करें। ✲✲✲

मन-बुद्धि-आत्मा

—मनोज सिंह, गंगापुर सिटी

जीव का शरीर कई इन्द्रियों और अनेक अंगों से बना होता है, लेकिन इस रचना की इकाई है—कोशिका। इस प्रकार चाहे जीव एक कोशिकीय या बहुकोशिकीय हो, मगर उनमें मन रूपी तंत्र अर्थात् चलायमान इच्छा विद्यमान रहती है। मन जीव का वह भ्रम है जो उसे संसार की ओर धकेलता है, जिस पर नियन्त्रण जीव की बुद्धि का होता है अर्थात् बुद्धि के अनुसार ही जीव का मन, इच्छाएँ और विचार रखता है। विचार बुद्धि का वह अंग है जिसके द्वारा जीव के मन को पहचाना जा सकता है। मन और बुद्धि को नियन्त्रित करती है, हमारी आत्मा या ईश्वर का अंश। अतः संसार में पैदा होने वाला मानव इन तीन चीजों की धरोहर अपने अन्दर रखकर लाता है और उनके प्रति उसका नजरिया, लाई गई बुद्धि के अनुसार रहता है। यह कहा जा सकता है कि आत्मा के ऊपर बुद्धि का आवरण रहता है और बुद्धि पर मन का। अतःबुद्धि, मन व आत्मा के मध्य पुल है जिसके सहारे मानव रूपी जीव ईश्वर तक पहुँचता है अर्थात् बुद्धि के द्वारा मन को आत्मा की तरफ मोड़कर ईश्वर को पाया जा सकता है। जिस प्रकार दर्पण रूपी बुद्धि के द्वारा आँखों रूपी मन से अपने चेहरे को देखना। अतः मन, बुद्धि और आत्मा के बीच सम्बन्ध को जो जीव समझ लेता है वह ईश्वर के बिल्कुल नजदीक होता है। मन को नियन्त्रित करना बहुत कठिन है परन्तु बुद्धि तथा सद् गुरुदेव की कृपा से मन को सात्विक विचारों में लगाकर परमात्मा की ओर उन्मुख किया जा सकता है।

देवत्व प्राप्ति का साधन

(श्री रघुनंदन सिंह शास्त्री)

न द्विषन्ति न याचन्ते, परनिन्दा न कुर्वते।
अनाहूता न चायान्ति, तेनाश्मानोऽपि देवता।।

अर्थः–न किसी से द्वेष करते हैं, न किसी से कुछ माँगते हैं, पर निन्दा नहीं करते हैं, बिना बुलाये नहीं आते हैं, इसी से पत्थर भी देवता है।

इन गुणों के कारण जब पत्थर भी देवता है तो यदि हम इनको धारण कर सकें तब जड़ देवता की अपेक्षा चेतन देव महान् नहीं होगा क्या ? अवश्य ही होगा और वह प्रत्यक्ष देवत्व कम से कम हम गुरू बन्धुओं को तो गुरूदेव में और अनेकों विशेषताओं के साथ सुलभ एवं अनुभव गम्य है ही।

पानी-पानी कहने से प्यास और रोटी-रोटी कहने से भूख नहीं शान्त हो सकती। ऐसे ही खाली राम-राम कहने से मोक्ष प्राप्ति कठिन ही है। जब तक "तज्जपस्तदर्थ भावनम्" (यो० १/२८) के अनुसार प्रभु की उपासना अर्थात् प्रभु के गुणों का समावेश अपने व्यवहार में, अपने स्वभाव में हम नहीं ले आवेंगे, तब तक शान्ति-लाभ अर्थात् मोक्ष कठिन ही है। (मो+क्ष) मोक्ष का अर्थ है मोह का क्षय हो जाना। और इसी का पर्याय वाचक शब्द है मोहन (मोह + न = मोह जिनको नहीं रहा) ऐसी स्थिति होती है कब जब हमें अपने 'स्वरूप' का ज्ञान हो जाता है। (स्व = आत्मरूप शरीर से भिन्न है) इसका ज्ञान करने के लिए आवश्यक है स्वाध्याय। स्वाध्याय को समझना हमारे लिए परम आवश्यक है। यह शब्द हमें कहाँ से मिला और इसका सही अर्थ क्या है यह देखना है।

'तप स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः' यो० २/१

महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में 'क्रिया योग' के अन्तर्गत इसे रखा है। सूत्रार्थ तो योग दर्शन के पहले अध्याय में जिन सब समाधियों की बात कही गयी है, उन्हें प्राप्त करना सर्व सामान्य के लिए अत्यन्त कठिन है। इसलिए हमें धीरे-धीरे विभिन्न सोपानों में से होते हुए उन सब समाधियों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना होगा। इसके पहले सोपान को क्रिया योग कहते हैं। इस शब्द का अर्थ है कर्म के सहारे योग की ओर बढ़ना। हमारी देह मानो एक रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन लगाम है। बुद्धि सारथी है और आत्मा रथी है। यह गृहस्वामी, यह राजा यह मनुष्य की आत्मा रथ में सवार है। यदि घोड़े बड़े तेज हों और लगाम खिंची न रहे, यदि बुद्धि रूपी सारथी उन घोड़ों को संयत करना न जाने तो रथ की दुर्दशा हो जाएगी। पर यदि इन्द्रिय रूपी घोड़े अच्छी तरह से संयत रहें और मन रूपी लगाम बुद्धि रूपी सारथी के हाथों अच्छी तरह पहुँच जाता है। इस तरह यह समझ में आ जायेगा कि तपस्या शब्द का अर्थ क्या है। तपस्या शब्द का अर्थ है इस शरीर और इन्द्रिय को चलाते समय लगाम अच्छी तरह थामे रहना, उन्हें अपनी इच्छानुसार काम न करने देकर अपने वश में किये रहना। अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करना और उसके पालन में जो शारीरिक या मानसिक कष्ट आवें, उन्हें सहर्ष सहन करना यह मानकर कि मेरे प्रभु की परम कृपा है जो यह योग अभी भुगते जा रहे हैं। इसका नाम है– 'तप'। निष्काम भाव से

इस तप का पालन करने से हमारा अन्तःकरण अनायास ही शुद्ध हो जाता है। यह गीता में वर्णित, कर्मयोग का ही अंग है। इसके अनन्तर आता है स्वाध्याय। स्वाध्याय का समान्यतः अर्थ किया जाता है पठन-पाठन। यहाँ पठन का तात्पर्य क्या है ? नाटक, उपन्यास, कहानी या धनोपार्जन सिखाने वाली पुस्तकों का पाठ नहीं वरन् उन सद् ग्रन्थों का पठन जो यह शिक्षा देते हैं कि आत्मा की मुक्ति कैसे होती है। फिर स्वाध्याय से तर्क या विचारात्मक पुस्तक का पाठ नहीं समझना चाहिए। जो योगी हैं, वे तो विचार आदि करके तृप्त हो चुके रहते हैं विचार में उनकी कोई रुचि नहीं रह जाती। वे पठन-पाठन करते हैं केवल अपनी धारणाओं को दृढ़ करने के लिए। शास्त्रीय ज्ञान दो प्रकार का है। एक है वाद (जो तर्क मुक्त और विचारात्मक है) और दूसरा है सिद्धान्त (मीमांसात्मक) अज्ञानवश मनुष्य प्रथमोक्त प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान के अनुशीलन में प्रवृत्त होता है। यह तर्क युद्ध के सामान है प्रत्येक वस्तु के सब पहलू देखकर विचार करना, इस विचार का अन्त होने पर वह किसी एक मीमांसा या सिद्धान्त पर पहुँचता है। किन्तु केवल सिद्धान्त पर पहुँचने से चरम लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता। इस सिद्धान्त के बारे में मन की धारणा को दृढ़ करना होगा। शास्त्र तो अनन्त हैं और समय अल्प है, अतः ज्ञान प्राप्ति का रहस्य है सब वस्तुओं का सार भाग ग्रहण करना। उस सार भाग को ग्रहण करो और उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करो। भारत वर्ष में एक पुरानी किम्वदन्ती है कि यदि तुम किसी राजहंस के सामने एक कटोरा भर पानी मिला हुआ दूध रख दो तो वह दूध पीलेगा और पानी छोड़ देगा उसी प्रकार ज्ञान का जो अंश आवश्यक है, उसे लेकर असार भाग को हमें फैंक देना चाहिए।

पहले-पहले बुद्धि की कसरत आवश्यक होती है। अन्धे के समान कुछ भी ले लेने से नहीं बनता है पर जो योगी हैं, वे इस तर्क युक्ति की अवस्था को पार कर एक ऐसे सिद्धान्त पर पहुँच चुके हैं जो पर्वत के समान अचल-अटल हैं इसके बाद उनका सारा प्रयत्न उस सिद्धान्त को दृढ़ करने में होता है, वे कहते हैं तर्क मत करो, यदि कोई तुम्हें तर्क करने को बाध्य करे तो चुप रहो, किसी तर्क का जबाव न देकर शान्त भाव से वहाँ से चले जाओ क्योंकि तर्क द्वारा मन केवल चंचल ही होता है। तर्क की आवश्यकता थी केवल बुद्धि को तेज करने के लिए जब वह सम्पन्न हो चुका तब उसे और बेकार चंचल करने की क्या जरूरत ? बुद्धि तो एक दुर्बल यन्त्र मात्र है यह हमें केवल इन्द्रियोंके घेरे में रहने वाला ज्ञान दे सकता है। पर योगी का उद्देश्य है, इन्द्रियातीत प्रदेश में चले जाना अतएव उनके लिये बुद्धि चलाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। उन्हें इस विषय में पक्का विश्वास हो चुका है, अतएव वे और अधिक तर्क नहीं करके चुप रहते हैं क्यों कि तर्क करने से मन समता से च्युत हो जाता है। चित्त में एक हलचल मच जाती है और चित्त की ऐसी हलचल उनके लिये एक विघ्न ही है। यह सब तर्क युक्ति या विचार पूर्वक तत्व का अन्वेषण प्रारम्भिक अवस्था के लिए है इस तर्क युक्ति के अतीत और भी उच्चतर तत्व समूह हैं। सारे जीवन भर केवल विद्यालय के बच्चों के समान विवाद या विचार समिति लेकर ही रहना पर्याप्त नहीं है। ईश्वर में कर्मफल अर्पण करने का तात्पर्य है कर्म के लिये स्वयं कोई प्रशंसा या निन्दा न लेकर इन दोनों को ही ईश्वर को समर्पण कर देना और शान्ति से रहना।

स्वाध्याय का अर्थ एक और भी है कि:-

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षते, नरश्चरितमात्मनः।
किंनु मे पशुमिस्तुल्यं किंनु में सत्पुरूषैरिति।।

प्रतिदिन मनुष्य अपने चरित्र को देखे कि मेरे चरित्र में पशुओं के समान क्या है और सत्पुरुषों के समान क्या है।

वास्तव में स्वाध्याय का यह अर्थ भी महत्वपूर्ण है-

स्व अध्ययन-अपना अध्ययन। संसार की सारी भौतिक विद्यायें पढ़ ली, सारा सांसारिक वैभव पा लिया तो भी क्या लाभ, यदि (स्वरूप स्थिति) आत्मरूप का ज्ञान नहीं हो सका। 'सोऽहम्' मैं वही सर्व शक्तिमान ब्रह्म हूँ यह कहना भर पर्याप्त नहीं है जब तक कि उस पर ब्रह्म के गुणों का पुर्णतः न सही किंचिन्मात्र ही सही अपने व्यवहार में, समावेश हम नहीं करते हैं। राजा के दरबार में जाकर हम कहें कि हम राजा हैं तो निश्चित ही हम दण्ड के भागी होंगे क्योंकि हमारे स्वयं को राजा कहने से हमारा उपहास ही होगा और हमारा स्वयं इस तरह करना पागलपन ही सा है। पर हमारा परिकर और जगत हमें राजा कहेगा निश्चय ही हमारे साथ राजा जैसा व्यवहार करेगा। हमारा परिकर हमें राजा तभी न कहे जब हमारा, व्यवहार राजा जैसा होगा। "राजा प्रजा रञ्जनात्" प्रजा को प्रसन्न करने से राजा हो जाता है। जिसने अपने परिवार को, पड़ौस को, समाज को, गाँव को, देश को अपने व्यवहार से प्रसन्न किया है वह आज भी राजा ही है। तो जिस तरह जिसका आचरण ब्रह्मवत् है वह ही ब्रह्म है।

विद्युद् ब्रह्मेत्याहुर्विदीन द्विद्युद्धियत्येनं पाप्मनो।
य एवं वेद विद्युत्ब्रह्मेति विद्युद्धन्येव ब्रह्म।। बृद्धारण्यक ५/७

पदार्थः- (विदानान्) विदीर्ण करने (काट दे) से (ब्रह्म + विद्युन् + इति + आहुः) ब्रह्म को विद्युत कहते हैं। (यः एवं + विद्युत + ब्रह्म + इति + वेद) इस प्रकार से ब्रह्म को विद्युत (पाप विदारक) जानता है विद्युत + एनम + पाप्मनः विद्यति) विद्य इस (ज्ञानी) के पाप को काट देता है। (हि + ब्राह्म + विद्युत + एवं) क्योंकि ब्रह्म विद्युत ही है।

तो दूसरों के अज्ञान रूप अन्धकार को दूर करने के लिये जो प्रकाश स्वरूप है वह ही ब्रह्म है और वह ही गुरू है और वह गुरू ब्रह्म ही है।

अज्ञान तिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जन शलाकाया।
चक्षुरून्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे की ज्ञान रूपी अञ्जन शलाका से जिसने आखें खोल दी हैं उन गुरू देवरूप ब्रह्म को नमस्कार है। गुरु ब्रह्म है इस बात को समझने के लिए श्रुति का उद्धरण ऊपर लिखा है। **"बहुजन हिताय** बहुजन सुखाय" ही अपने गुरू देव सदृश महापुरुषों का जन्म होता है। इस व्रत का ग्रहण करके जो इस ऊँचे लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाता है। उसका तो जीवन ही व्यर्थ है।

"वृथैव तस्य जीवनम्"

जगत में गुरुदेव का अवतरण क्यों होता है ? औरों के निमित्त अपना जीवन दान करने को, जीवों के आकाश भेद क्रन्दन को दूर करने को, विधवा के आँसू पोछने को, पुत्र वियोग से पीड़ित अवलाओं के मन को शान्ति देने को, सर्व साधारण का जीवन संग्राम से सक्षम करने को शास्त्रों के

उपदेशों को फैलाकर सबका ऐहिक और पारमार्थिक मंगल करने को और सबके भीतर जो ब्रह्म सिंह सुप्त है उसे जगाने को

गुरू भाइयों !

'आत्मनो मोक्षार्थ जगत हिताय च'।

हम लोगों का जन्म हुआ है। बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? उठो, जागो, चौकन्ने होकर औरों को चेताओ। अपने नरजनम को सफल करो।

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'।

ज्ञान कहीं बाहर से आने वाला नहीं है। भगवान बुद्ध देव को कितने योगियों और संन्यासियों के पास जाने पर भी कहीं शान्ती नहीं मिली, तब ''इहासेन शुण्यत मे शरीरम'' कहकर आत्म ज्ञान लाभ करने को वे स्वयं ही बैठ गये, प्रबुद्ध होकर उठे।

''नाहं भूतगणो देहो, नाहं चाक्षगणस्तथा।
एतद्विलक्षणः कश्चिद विचारः सोऽयमीदृशः''।।

मैं भूतों (पृथिव्यापोतेजो वायुराकाशः) का संघात रूप देह नहीं हूँ और न इन्द्रिय समूह ही हूँ, बल्कि इससे भिन्न ही कोई हूँ, वह विचार इस प्रकार होता है।

इस प्रकार का विचार करने के लिए हम गुरू बन्धु प्रतिदिन आरती में गुरूदेव भगवान से प्रार्थना करते हैं कि **'बहिर्मुखी प्रवाह को प्रभुजी अन्तर से देठ जोड़'**। जब तक हम अपने वास्तविक स्वरूप जो यह देह नहीं है इससे भिन्न है, की जिज्ञासा, तत्परता पूर्वक प्रबुद्ध नहीं करेंगे तो भाई खाली राम कहने या सोऽहं जाप उसके अर्थ की भावना किये बिना जैसा कल्याण कारी है। तदनुरूप फल की प्राप्ति नहीं होगी।

स्वाध्याय स्वअध्ययन हम करें देखें कि हमारे में देवत्व के वह गुण हैं जो कि पत्थर को भी देवत्व प्रदान किये हुए हैं। यदि नहीं तो उनका समावेश अपने में करें।

हम कोई साधारण जड़ वस्तु थोड़े ही हैं। अज्ञान वश अपने को क्षुद्र (छोटा) समझे बैठे हैं। सर्व शक्तिमान ब्रह्म हमसे भिन्न अन्य नहीं है।

अयमात्मा हि ब्रह्मैव सर्वात्मकतया स्थितः।
इति निर्धारितं श्रुत्या बृहदारण्यक संस्थया।। अपरोक्षानुभूति

यह आत्मा सर्वात्म भाव से स्थित हुआ ब्रह्म ही है ऐसा बृहदारण्यक शाखा की श्रुति से निश्चय किया है। गुरूदेव भगवान् द्वारा प्रदत्त मन्त्र हमें प्रतिक्षण चेतावनी देता है कि हम ही सर्वशक्ति मान् हैं, विभु हैं, पर तदनुरूप (ब्रह्मवत) व्यवहार क्षुद्रभावना क्षुद्र विचार वाला ही क्षुद्र है। हम क्षुद्रत्व का त्याग करें, महान बनें और वह महान तो जब हमारे व्यवहार में आ आजायेगी तो गुरूदेव भगवान का बच्चा भी देवत्व प्राप्त करके **''दीपाद्रवर्तित इवान्यतर प्रदीप''** दीपक से जला हुआ दूसरा दीपक किंचिन्मात्र भी प्रथम दीपक से कम नहीं होता इसी तरहः-

न द्विषन्ति न याचन्ते परनिन्दा न कुर्वते।
अनाहूता न चायान्ति तेन मानोऽपि देवता।।

यो देवत्व के गुण धारण करने पर देवता ही हो जायेगा। ❋❋❋

अनादि महासिद्ध-योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

प्रेषकः- पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

रामरती का उद्धार एवं न्यायाधीश और उसकी पत्नी रामादेवी को शरण में लेना

आप भक्त मंडली के साथ वनों को पार करते हुए बड़ी मस्ती के साथ यात्रा पर चले जा रहे थे। बिहार राज्य की बंगाल से लगती सीमा के समीपवर्ती जंगल को पार करके आप यमुनिया घाट पर रुक गये और गंगाजी में स्नान करके सन्ध्या वन्दन करने लगे, इतने में दो क्षत्रिय पिता-पुत्र एक पथभ्रष्ट युवती रामरती की हत्या करने के उद्देश्य से वहाँ आकर झाड़ियों की ओट में छिपकर हत्या की योजना बनाने लगे। उनमें एक उस युवती का पिता तथा दूसरा भाई था। उनकी कुछ बातें प्रभु जी

के कान में पड़ गयी। आपने उन्हें अपने पास बुलाकर कहा- तुम लोग बड़े परेशान नजर आ रहे हो। यदि तुम हमें सारी बात सत्य-सत्य बता दो तो हम तुम्हारी सारी परेशानी दूर कर देंगे। यह सुनकर पहले तो उन्होंने प्रभु जी पर विश्वास नहीं किया और सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि ये हमसे सारा भेद लेकर हमें फँसा दें। वे टाल-मटोल करते हुए वहाँ से भागने की चेष्टा करते रहे। प्रभुजी ने उनके मन की बात को जानकर पुनः कहा-देखो, हम महात्मा हैं, दुःखी जनों का दुःख दूर करने के लिये ही हम इधर-उधर विचरण कर रहे हैं। हम पर विश्वास करो। हम तुम्हारा भला ही करेंगे बुरा नहीं। भु जी की प्रेमभरी मधुर वाणी को सुनकर लड़की के पिता ने आपको सारी बात बता दी और यह भी बता दिया कि-हम उस दुराचारिणी रामरती को आज अवश्य हत्या कर देंगे। प्रभु जी ने उसे समझाते हुए कहा- देखो ऐसा घोर पाप करना उचित नहीं है। इस बार तुम अपनी लड़की को क्षमा कर दो और उसे हमसे मिला दो। हम उसे समझा बुझाकर सही मार्ग पर ले आयेंगे। इतने में शराब के नशे में झूमती हुई रामरती वहाँ आ पहुँची। ज्योंही वह आगे को जाने लगी तो प्रभु जी ने उसे रोककर अपने पास बैठाया और बड़े प्यार से पूछा-बेटी ! तुम शराब क्यों पीती हो, व्यभिचार क्यों करती हो ? वह बोली- इसमें मुझे बड़ा आनन्द आता है। आनन्द पाने के लिए ही मैं यह सब करती हूँ। प्रभु जी ने कहा- यदि इससे बड़ा आनन्द तुम्हें मिल जाये तो क्या तुम ये काम छोड़ दोगी ?

वह बोली- यदि संसार में इससे बड़ा भी कोई आनन्द है और वह मुझे मिल जाये तो मैं ये सब काम छोड़ दूँगी।

प्रभु जी मुस्कराते हुए बोले- अच्छा देवी ! तुम्हें वह आनन्द अवश्य मिलेगा। यह कहकर आपने उसे पद्मासन में बैठा कर उसे आँखें बन्द करने को कहा और उस पर तीव्र शक्तिपात कर दिया। जिससे उसकी उसी क्षण समाधि लग गई। प्रभु जी किसी महात्मा से मिलने चले गये। तीन दिन बाद वहाँ से लौटे तो देखा कि रामरती को आप जिस प्रकार बैठा गये थे वह उसी हालत में बैठी हुई है। प्रभु जी ने उसे आवाज दी किन्तु वह बोली नहीं, वह तो समाधि में लीन थी। तब आपने दूध मंगाकर दूध का कटोरा उसके मुँह से लगाया और उसे जोर-ज़ोर से हिलाया तो वह धीरे-धीरे दूध पी गई, किन्तु उसने न तो आँखें खोलीं न कुछ बोली ही। प्रभु जी ने उसके पिता और भाई से कहा- यह अब कहीं नहीं जायेगी, इसी प्रकार यहीं बैठी रहेगी। तुम इसकी देखरेख करना और इसे दूध पिलाते रहना। उसे देखने के लिये वहाँ काफी लोग एकत्रित हो गये थे। प्रभु जी ने उन सबसे कहा-रामरती की खूब सेवा किया करो और इसे दूध पिलाया करो। जो इसे नित्यप्रति दूध पिलायेगा उसकी हर प्रकासर की मनोकामना पूर्ण होगी। प्रभु जी के अमोघ आशीर्वाद से रामरती परम योगिनी बन गई और देवी दुर्गा के रूप में पूजी जाने लगी। उसके भक्तों ने वहाँ बड़े-बड़े मन्दिर और ५

र्मशालायें बनवा दी। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। वह हमेशा समाधि में रहा करती थी। भोजन कुछ नहीं करती थी। दिन में एक-दो बार दूध पी लिया करती थी।

इस प्रकार उस पथभ्रष्ट नारी का उद्धार करके प्रभु जी आगे को चले गये। यमुनिया घाट को पारकर बंगाल में प्रवेश करते ही आपने न्यायाधीश आशुतोष चटर्जी और उसकी पत्नी रामादेवी को अपनी शरण में लेकर अनुग्रहीत किया तथा रामादेवी के भक्ति भाव और योगनिष्ठा को देखकर आपने कृपा पूर्वक उसे समाधि की उच्चतम स्थिति में पहुँचा दिया। वहाँ से प्रभु जी ने अपनी शिष्य मंडली के साथ उत्तर पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया। जंगली भैंसे, शेर, हाथी, शपूकर, रीछ आदि हिंसक जानवरों से व्याप्त एवं झाड़ी झंखाड़ों से अगाम्य घोर वनों को पार करते हुए तथा नर-पिशाचों और तान्त्रिकों का सामना करते हुए कई दिनों बाद आप ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर पहुँचे।

समुद्र के समान अगाध जल राशि वाली उस भयंकर नदी को किसी प्रकार नौका द्वारा पार करके आप कामरूप (मयगाँव) पहुँचे और रात्रि को वहीं पर विश्राम किया। वहाँ के तान्त्रिक राजा रणसिंह द्वारा मारण प्रयोग किये जाने पर आपने अपने योगबल से उस प्रयोग को विफल कर दिया। जिससे वह राजा लज्जित होकर आपसे क्षमा याचना करने लगा और आपका भक्त बन गया। उस राजा के योगी गुरु के अहंकार को भी प्रभु जी ने इसी प्रकार चूर्ण कर दिया। अब आगे की यात्रा में वही राजा आपका सहायक बन गया। इस प्रकार मार्ग की अनेकों बाधाओं का सामना करते हुए तथा भूखे-प्यासे आसाम के उन दुर्गम एवं निर्जन वनों को पार करते हुए कई दिनों पश्चात् आप अपनी मंडली के साथ गोहाटी नगर पहुँचे।

योगसिद्धा अवधूतानी पर कृपा

गोहाटी नगर के फांसी बाजार में आप किसी धर्मशाला में ठहर गये और कुछ दिन वहाँ निवास करके आपने बहुत से संस्कारी जीवों का कल्याण किया। उन दिनों गोहाटी में एक योग सिद्धा अवधूतानी निवास करती थी। उसके गुरु परिपूर्ण योगी थे। उन्होंने उसे कृपापूर्वक योग साधना की विधि समझाई और अपने सामने अभ्यास में बैठाकर ध्यान की उच्चतम स्थिति प्रदान कर दी। उनकी कृपा से उसे योग की कई सिद्धियाँ प्राप्त हो गईं। अपनी भौतिक देह को त्यागने से पूर्व उन्होंने अवधूतानी को अपने पास बैठाकर बड़े प्यार से कहा-देवी ! अब हम इस संसार से जा रहे हैं हमारे पास जो कुछ था वह हमने तुम्हें दे दिया है। रही बात मोक्ष की, वह हमारे हाथ में नहीं है। मोक्ष देने की सामर्थ्य योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज जी के अन्दर है। उन्हीं को ही यह अधिकार मिला हुआ है।

यदि तुम मोक्ष की इच्छुक हो या योग में और किसी प्रकार की प्रगति चाहती हो तो यहीं उनकी प्रतीक्षा करो, वे यहाँ आने वाले हैं। उनके यहाँ आने पर तुम सर्वतोभावेन उनकी शरण में चले जाना। उनकी करुण कृपा से तुम्हें मोक्ष भी मिल जायेगा। यह कहकर उन योगिराज ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। अवधूतानी अपना अधिकांश समय अपनी कुटिया में बैठकर ध्यानमग्न रहा करती थीं। प्रभु जी के गोहाटी पहुँचने का ज्ञान उसे ध्यानावस्था में हो गया था और ध्यान में ही उसे आपके दर्शन भी हो गये। उधर प्रभु जी ने एक लीला करते हुए वहाँ लोगों से पूछा–क्या यहाँ कोई योगी रहता है। उन्होंने कहा हाँ ! महाराज ! यहाँ एक अवधूतानी रहती है। उसके पास बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ हैं। जो भी उसके दर्शन करने जाता है उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है। दूर-दूर से लोग उसके दर्शनार्थ आया करते हैं।

प्रभु जी बोले–यदि ऐसी बात है तो हम भी उसके पास जायेंगे।

अगले दिन भक्तमंडली को साथ लेकर प्रभु जी अवधूतानी के आश्रम की ओर चल पड़े। उध ‌र अवधूतानी को ध्यान में यह अनुभव हो गया था कि प्रभुजी इधर ही आ रहे हैं। वह आपकी अगुआई के लिये बड़ी तेजी से बाहर की ओर निकली। वह अभी कुछ ही दूर पहुँची थी कि–भक्तों की टोली के साथ प्रभु जी सामने आते दिखाई दिये। वह शीघ्रता से आगे जाकर आपके चरणारविन्दों से लिपट गई। उसकी आँखों से प्रेमाश्रु बरस रहे थे। और आनन्दातिरेक से उसका गला रूंध गया था। वह हाथ जोड़कर नत मस्तक होकर आपके सामने खड़ी हो गई और बहुत देर बाद कठिनता से केवल इतना बोल पायी–''प्रभो आपने दर्शन देकर मुझ अकिंचन को कृतार्थ कर दिया है। अब चलकर मेरी कुटिया को भी अपनी चरणरज से पवित्र करने की कृपा कीजिये''।

अवधूतानी के इस विनम्र भक्तिभाव को देखकर जहाँ प्रभुजी के साथ जाने वाले सत्संगी लोग आनन्दित हो रहे थे वहीं उस अवधूतानी की योग सामर्थ्य से परिचित नगरवासी इस दृश्य को देखकर आश्चर्य चकित हो रहे थे।

प्रभु जी मन्द मन्द मुस्कराते हुए उसके साथ चले गये। अवधूतानी ने अपने आश्रम में प्रभु जी का बड़ा स्वागत किया। उसने सर्वप्रथम आपको एक चौकी पर बैठाकर आपके चरण धोये, फिर तिलक किया, पुष्पमाला पहनाई, आरती की और फिर दूध, फल और मेवों का नैवेद्य भेंट किया। आज अवधूतानी के हर्ष का कोई पारावार नहीं था। वह अपने भाग्य को सराहती हुई मन की मन विचार कर रही थी कि योगेश्वर श्री प्रभु जी को पाकर मैं तो आज धन्य हो गई हूँ। अब मेरे लिये कुछ भी करना और पाना शेष नहीं रहा है। प्रभु जी लगभग दो घण्टे वहाँ रहे और सत्संग चलता रहा। वहाँ से प्रस्थान से पूर्व आपने अवधूतानी को योग के कई रहस्य बताये तथा उसे और उसके

शिष्यों को गद्‌गद् हृदय से आशीर्वाद दिया। अवधूतानी ने श्री प्रभु जी एवं उनके भक्तसमुदाय को बड़े सम्मान के साथ विदा किया।

अहंकारिणी योगिनी का मान मर्दन एवं शरणागति

प्रभु जी लगभग एक सप्ताह गोहाटी रहे इस बीच आपने वहाँ कई पुण्यात्मा लोगों को योगमार्ग में दीक्षित किया। वहाँ एक अन्य अवधूतानी रहती थी। ध्यानयोग में उच्च स्थिति प्राप्त नहीं कर पायी थी, वह बहुत अहंकारिणी थी। एक बार प्रभु जी के युवा शिष्य हरीहरानन्द जी ध्यान में बैठे हुए थे। उधर वह अवधूतानी भी अपनी कुटिया में ध्यानस्थ थी। उसने ध्यान में ही हरीहरानन्द जी को देख लिया और उसे उनकी उच्च ध्यानास्थिति का पता चल गया। उसने अपने मन में यह विचार किया कि यह युवक कोई ऊँची स्थिति वाला योगी है। अतः इसे अपने वश में करना चाहिये। उसने अपनी योगशक्ति से हरीहरानन्द जी को खींचने का प्रयत्न किया, किन्तु उन पर अवधूतानी की शक्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उनके ध्यानाभ्यास में विक्षेप तो अवश्य हुआ और वे उसे हटाने का बार बार प्रयत्न करते रहे। जब वह नहीं हटी तो उन्होंने उसका अहंकार चूर्ण करने के उद्‌देश्य से उसका पुतला (सूक्ष्म शरीर) खींचकर सामने खड़ा कर दिया। वह पुतला उनके आगे ''क्षमा करो'' ''क्षमा करो'' करके गिड़गिड़ाने लगा। प्रभु जी ने सुना तो वे बोले– हरीहरानन्द यह क्या तमाशा हो रहा है ?

हरीहरानन्द ने कहा–प्रभो ? इसने मेरे ध्यान में बाधा डाली और मुझे खींचने का प्रयत्न किया था। अतः मैंने परेशान होकर इसे ही खींचकर यहाँ खड़ा कर दिया है। अब आप आज्ञा दें कि इसे कहाँ रखूँ ? प्रभु जी मुस्कराते हुए बोले– अच्छा ऐसी बात है तो इसे सामने खड़े बाँस के अन्दर डाल दो। हरीहरानन्द जी ने ऐसा ही किया।

तब बाँस के अन्दर से भी यही आवाज आनी शुरू हो गई– मुझसे भूल हो गई थी, अब क्षमा करो, क्षमा करो। प्रभु जी ने दया करके उसे मुक्त करा दिया। अवधूतानी को अपने किये पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसका अहंकार चूर-चूर हो गया। अगले दिन वह संकोच करती हुई बड़ी विनम्रता पूर्वक प्रभु जी के चरणारविन्दों में उपस्थित हो गई और दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोली– ''प्रभो ! कल के अपराध के लिये मुझे क्षमा कीजिये। मैं आज आपकी शिष्या बनना चाहती हूँ। कृपा करके मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिये।'' प्रभु जी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए उसे कृपापूर्वक योग दीक्षा दे दी।

क्रमशः

※※※

श्री गुरुदेव की अहैतुकी कृपा

श्यामलाल चौधरी (सिरसा)

१. मृत्यु पास फटक न सकी !

सन् १९९३ जून मास में मैं जब घर पर ही था और बृहस्पतिवार का दिन था कि सुबह श्री आनन्द कन्द श्री प्रभुजी की आरती करने के बाद जैसे ही मैंने प्रणाम किया कि एक आवाज आयी 'लल्ला ! बुधवार रात को बारह बजे तुम्हारा शरीर छूट जायेगा। मैंने समझा कि यह मन का वहम (भ्रम) है। मैंने दुबारा प्रणाम किया तो आवाज आयी कि इतवार (रविवार) शाम को या सोमवार की सुबह तुम्हें बुखार होगा और मंगलवार को तुम्हें फिर वही अटैक होगा जैसा पहले हुआ था और उसके बाद बुधवार रात को बारह बजे तेरा शरीर छूट जायेगा। मैंने यह बात किसी को नहीं बतायी कि शायद अभी भी मन का भ्रम हो। रविवार को जब मैं सिरसा सत्संग में गया तो मैंने मास्टर हुकुमसिंह जी के लड़के ओम प्रकाश को बताया कि ऐसा कुछ महसूस हुआ है। होना है या नहीं- यह नहीं मालूम। उन्होंने यही बात अपने पिताजी (मा. हुकुमचन्द जी) को बता दी। वे ऐसा सुनकर हैरान हुए। मैंने मास्टर जी से कहा कि यदि कल मुझे बुखार हुआ तो मैं कल (सोमवार) को अवश्य ही आश्रम जाकर दर्शन करूँगा।

जैसे ही शाम को मैं अपने गाँव कर्मगढ़ पहुँचा तो मुझे बुखार ने आ घेरा और मुझे यह सब सच लगने लगा कि वक्त नजदीक आ गया है। मैंने अपने घर वालों को कुछ नहीं बताया कि क्या होने वाला है। अगले दिन सुबह मैं स्नान व पूजा पाठ से निवृत होकर सिरसा आश्रम पहुँचा तो ओमप्रकाश जी ने मेरा हाथ पकड़ा और अपने पिताजी से कहा कि इन्हें तो बुखार हो गया है। मैं लगभग दो घण्टे तक वहीं बैठा रहा। मास्टर जी, उनकी पत्नी (जिन्हें मैं मौसीजी कहता) व ओमप्रकाश जी सभी परेशान थे और अश्रुपूरित नेत्रों से मुझे देखकर कह रहे थे कि यह क्या होने वाला है ? यह चला जायेगा।

उन्हीं दिनों गंगा दशहरा का कार्यक्रम था। उसी दिन बुधवार को ही श्री ओमप्रकाश जी को गंगा दशहरा पर ऋषिकेश आना था। परन्तु मेरी बातों को सुनकर एवं मुझे देख कर उन्होंने अपना प्रोग्राम कैन्सिल कर दिया। मैं वहीं से अपने घर चला गया और अनमने मन से एकाध रोटी खाई, ताकि घर वाले यह न कहें कि क्या बात है ? शाम को फिर पूजापाठ किया। फिर अटैक ने अपना प्रभाव

दिखाना शुरू कर दिया। अगले दिन प्रातः मैं उठा। पूजा-पाठ किया। उसके बाद तो जहाँ-का-तहाँ रह गया और तकरीबन एक घण्टा तक अटैक हुआ। जब थोड़ी-सी राहत मिली तो उठकर चारपाई पर लेट गया और सभी घर वालों को बुलाया और वे सारी बातें जो नहीं बतायीं थी कि क्या होने वाला है, - बता दी। इस पर घर वालों ने रोना शुरू कर दिया। मैंने समझाया भी कि एक-न-एक दिन तो सब को जाना ही है, इसलिए रोओ-धोओ मत। लेकिन मेरी कौन सुनता ? घर वालों ने मेरे भाई, जो सिरसा व हिसार में रहते हैं, को बुलाने के लिए संदेश भेज दिया।

परन्तु श्री प्रभु जी को कुछ और ही मंजूर था। जब मेरा छोटा भाई बड़े को बुलाने के लिए हिसार पहुँचा और मेरे बारे में उन्हें बताया तो भाईसाहब के दिमाग में सारी बातें चलचित्र की भाँति घूम गई जो उन्होंने सोई अवस्था में देखी थीं। रविवार को जब मेरा बड़ा भाई दोपहर को लेटा हुआ था सोई हुई अवस्था में बड़बड़ाने लगा कि 'कुछ नहीं होगा-कुछ नहीं होगा-हम बचा लेगें।' भाभीजी के पूछने पर उन्होंने बताया कि ऐसा लगा कि कोई बीमार है और हम बचा लेगें। भाई साहब श्री सिद्ध गुफा पर जाते रहते हैं। उसी दिन भाभीजी ने नींद में देखा कि उनकी बुआजी जो हिसार में ही रहती हैं, घर आयीं हैं और कहती हैं कि मेरे साथ चल कोई बीमार है। तेरे जाने से वह ठीक हो जायेगा। यहाँ यह बताना समीचीन होगा कि मेरी भाभी की ध्यान की स्थिति काफी अच्छी है। उन्हीं को माध्यम बना मैं स्वयं श्री प्रभुजी के चरणों में आया था। जब मेरा छोटा भाई हिसार पहुँचा तो भाई-भाभी को अपने सपनों की बातों में सार्थकता दिखलाई दी। दोनों ने तत्काल सिरसा आश्रम के लिए प्रस्थान किया। वहाँ ध्यान लगाया तो श्री प्रभुजी ध्यान में आये। भाभी ने देखा कि श्री प्रभुजी का वृहद हाथ मेरे शरीर पर घूम रहा है और पूरा शरीर प्रभुजी के तेज से ढका हुआ है। प्रभु जी कह रहे हैं- कहीं नहीं जायेगा।

इसके बाद भाई व भाभीजी गाँव पहुँच गये। घर वालों को प्रभुजी की शक्ति पर पूरा भरोसा था किन्तु मन सबके बेचैन थे। समय काटे नहीं कट रहा था। अधिकांश रिश्तेदार भी घर पर आकर एकत्र हो गये। रात तकरीबन साढ़े दस बजे मैं बेहोश हो गया और एक चारपाई पर निढाल हो गया। इस दौरान क्या हुआ पता नहीं। समय कैसे निकल गया यह तो वे लीलाधारी ही जाने पर मैं तो प्रातः ८ बजे उठा। सूर्य चमक रहा था। बहुत थकान महसूस कर रहा था। स्नान करके पूजा पाठ किया और शाम को हम लोग सिरसा आश्रम पर पहुँचे। मास्टर साहब व मौसीजी (उनकी पत्नी) तथा सभी आश्रम वासी मुझे अश्रुपूरित नेत्रों से देख रहे थे। सजल आँखों से सभी ने श्री प्रभुजी के जयकारे लगाये। मास्टर जी ने गत रात को ध्यान में देखा कि जब मैं बेहोश हो गया था तो उस समय में मेरे शरीर के तीन शरीर बन गये थे। एक शरीर गाँव में, एक सिरसा आश्रम में और एक

सिद्धगुफा संवाई पर है। प्रभुजी के हाथों से निकले तेज की किरणों से मेरा शरीर आच्छादित है। जिस पर श्री प्रभुजी की करुणा और उनका वरद् हाथ हो उसे समय से पहले कौन मार सकता है ? इस प्रकार श्री प्रभुजी ने मुझे दोबारा जीवन दिया। मैं उनकी कृपाओं का क्या बखान करूँ ? वे तो करूणा सागर हैं। वे कण-कण और रोम-रोम में समाए हुए हैं।

२. लाइट दिखलाई और पीठ फेर ली !

बात सन् १९९६ की है। एक दिन मैं प्रातः लगभग ५ बजे उठा और ध्यान में बैठ गया। लेकिन अपना गुरूमंत्र बोलने का यत्न करूँ तो मुख से राधा स्वामी निकले। मैंने कई बार प्रयत्न किया लेकिन परिणाम वही। पाँच-दस मिनट बीत गये। अब मैं सोचने लगा कि क्या बात हो गयी-गुरु मंत्र का जाप क्यों नहीं हो रहा है। तो आवाज आयी कि तू राधा-स्वामी के पीछे पड़ा है न ! इसलिये ऐसा हो रहा है। यह देख राधा स्वामियों के गुरूदेव मेरे पास बैठे हैं। ये तेरे गुरूभाई हैं। मेरे ही बच्चे हैं। तब मुझे श्रीगुरुदेव की अप्रैल १९९० में श्री सिद्धगुफा पर कही वह बात याद आई जब उन्होंने एक शिष्य के यह कहने पर कि गुरूदेव ! देखिये राधा स्वामी डेरे पर कितनी ज्यादा भीड़ रहती है ! अपने यहाँ क्यों नहीं ? तो उन्होंने जवाब दिया था कि भीड़ एकत्र करने से क्या फायदा है ? कुछ रुक कर वे बोले कि लल्ला ! हमारे बच्चे कहाँ के कहाँ पहुँच गये और हम जहाँ थे वहीं हैं ! मुझे प्रभुजी के वे शब्द याद आते हैं जो उन्होंने अपने एक शिष्य से कहे थे कि योगी का काम क्या होता है ? लाइट दिखलाई और पीठ फेर ली !

३. आशा की किरण जगाई-नैया पार लगाई

मैं हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार में डी.पी.एल. क्लर्क के पद पर कार्यरत था और १९८८ से कार्य कर रहा था। परन्तु सन् १९९६ में जब हरियाणा सरकार ने दैनिक वेतन भोगी डी. पी.एल. कर्मचारी को पक्का किया तो मेरे आर्डर क्लास-४ पर कर दिये गये। जिसके खिलाफ मैं चण्डीगढ़ हाईकोर्ट में गया और स्टे ले लिया। किन्तु प्रथम पेशी पर ही मैं केस हार गया। अब मैं दुविधा में था कि इसकी अपील सर्वोच्च न्यायालय में करूँ या न करूँ। क्योंकि सम्पर्क करने पर अधिकांश वकीलों की राय यह थी कि मैं केस नहीं जीत पाऊँगा।

उन्हीं दिनों श्री सिद्धगुफा संवाई पर यज्ञ चल रहा था। मैं शाम के समय आश्रम पर पहुँचा परन्तु मेरा मन न्यायालय के आदेश की प्रतिलिपि लेने के लिए उतावला था। इसलिए प्रातःकाल ही

वापस चल दिया। रास्ते में मुझे लगा जैसे महाराज जी कह रहें हों कि लल्ला कापी तो तुझे दोपहर बाद ही मिलेगी। और तुम सुप्रीम कोर्ट में केस डाल दो। हम तुम्हारे साथ रहेंगे। और हुआ भी ऐसा ही। मैं इधर-उधर भटकता रहा लेकिन कोई सूत्र ऐसा नहीं मिला जो मुझे यथाशीघ्र कापी दिलवा दे। दोपहर लगभग एक बजे हमारे हिसार का एक आदमी जो वहाँ काम करता था, मुझे मिल गया और उसने प्रयत्न करके शाम तक कापी मुझे दिलवा दी। इस आदमी की व्यवस्था करके गुरुजी ने मुझ पर दया की। प्रतिलिपि लेकर मैं उसी दिन हिसार वापस आ गया।

मन बहुत उदास था, क्योंकि सभी वकीलों की राय में सफल होने के अवसर दस प्रतिशत से अधिक नहीं थे; और ऐसा भी तब जबकि अदालत से नोटिस जारी हो जाये। लेकिन श्री गुरुदेव की वाणी पर मुझे पूरा विश्वास था। मुझे विश्वास था कि करुणा सागर का आशीर्वाद मेरे साथ है। वे स्वयं ही मेरे लिए जीत का मार्ग प्रशस्त करेंगे। सम्भवतः १५ सितम्बर थी उस दिन । मैंने हिसार के ही एक वकील साहब को साथ लिया और दिल्ली पहुँच गया। वहाँ एक वकील साहब से सारी बात हुई और उन्होंने केस सुप्रीम कोर्ट में दाखिल कर दिया। १६ जनवरी १९९८ को श्री प्रभुजी के परम आशीर्वाद से मेरा केस लगा और उनकी परम अनुकंपा से यूनीवर्सिटी के लिए नोटिस जारी हो गया। टेलीफोन पर बात करते हुए वकील साहब ने मुझे मुबारकबाद दी और कहा कि केवल भाग्यशाली लोगों के केस में ही नोटिस जारी होते हैं। इसके बाद मैं अगले ही दिन श्री सिद्धगुफा सवांई चला आया। रात को रुका और प्रातः ही वापस चल पड़ा। परम्परानुसार सुप्रीम कोर्ट में बार-बार तारीखें लगीं और अंतिम तारीख १९ मार्च १९९९ को सुनवाई हुई और फैसला मेरे हक में हो गया। इस तरह प्रभु जी ने शुरू से आखिर तक मेरे केस की मानों स्वयं पैरवी की और मुझे उनके आशीर्वाद से सफलता मिल गयी।

आज मैं याद करता हूँ कि नौकरी लगने से बहुत पहले जब मैं १९८५ में आश्रम गया था तो पैन्ट-कमीज पहने था और जाकर श्रद्धालुओं के बीच गुरुदेव के सामने बैठ गया। वहाँ प्रभुजी ने मुझसे कहा कि आज तो बाबूजी बनकर आया है। हमें प्रणाम भी नहीं किया। सहज भाव से कहे गये उनके ये कृपा वचनों ने ही शायद मेरी वर्तमान सर्विस के रूप में मेरा भविष्य निर्धारित कर दिया था। आज पन्द्रह वर्षों के लम्बे अन्तराल के बाद भी उनके आशीर्वचन ज्यों-के-त्यों मेरे कानों में गुंजायमान हैं। इस दीर्घावधि में अनेक बार मुझ पर विपत्तियाँ आयीं किन्तु श्रीप्रभुजी ने करुणा कृपा कर मुझे उनसे बचाया। ऐसे सर्वजनों के रक्षक करुणा निधान हमारे श्री सद्गुरुदेव हम सभी का कल्याण करते रहें-यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है। जय गुरुदेव !

※※※

(पिछले अंक से आगे)

नाभि-चालन

जीवन तत्व साधन की चौथी क्रिया का नाम नाभि-चालन है। इसमें दाँये से बाँये व बाँये से दाँये करवट बदलने की क्रिया की जाती है। इसका यथार्थ रूप यह है कि जिस तरह कोई मगरमच्छ किसी जीव का भक्षण करके बाहर बालू में आकर अपने पेट को इधर- उधर हिलाता है और बड़े से बड़े जीव को भी हजम कर जाता है, उसी प्रकार इस क्रिया को करके पेट की अग्नि को तीव्र किया जाता है।

इस क्रिया की विधि यह है कि पहले चित्त लेट जाओ। हाथ बगल में पड़े रहें। दोनों पैरों को मिला लो। अब बाँयी ओर करवट लो, मगर पेट के नीचे का ही भाग घूमे। छाती कुछ उठेगी और दाहिना कन्धा भी कुछ उठ जायेगा। सिर बाकायदा एक ही जगह पर कायम रहेगा। बाँयी करवट लेने के तुरन्त बाद दाहिनी करवट ले लो, इसमें भी धड़ का भाग ही घूमेगा, सिर एक जगह रहेगा। इसी तरह बाँये व दाँये करवट पलटता रहे। कहीं रुकने की जरूरत नहीं है। लगातार पल्टा खाता रहे। इस क्रिया को कम से कम पन्द्रह मिनट तक करना चाहिए और अधिकतम आधे घण्टे तक किया जा सकता है। यदि गिनती से इस क्रिया को किया जावे तो पन्द्रह मिनट में एक हजार बार करवट बदलना पड़ेगा।

इस क्रिया को करने से भूख अधिक लगती है। खाना भी हजम हो जाता है। मन्दाग्नि समाप्त हो जाती है। जिनके पेट में हवा बनती है, वह भी बननी बन्द हो जाती है।

जो भोजन मुख में डाला जाता है उसे पहले दाँतो से चबाया जाता है। फिर वह गले के रास्ते पेट में जाता है। पेट या पाकस्थली या आमाशय एक नाशपाती की शक्ल की एक खोखली थैली जैसी है। यह बाँई ओर की उदर गुहा के ऊपरी भाग में और उदर वक्ष व्यवधायक पेशी के ठीक नीचे की ओर है। पाकस्थली के तीन प्रधान स्तर है- सबसे ऊपर वाला स्तर (Peritonem) है। इसके द्वारा यह उदर प्राचीर से संयुक्त रहता है तथा लसिका का दौरा ठीक करने में सहायता करता है। दूसरा मध्यस्थ (Muscular coat) है। यह माँसपेशी का बना है। पाकस्थली में भोजन का पदार्थ जाते ही ये सब मांसपेशियाँ एक के बाद एक संकुचित होकर लहरें जैसी उठने लगती है। जिससे खाया हुआ पदार्थ तुरन्त चूर-चूर हो जाता है। तीसरा अन्तरमन स्तर (Muscous coat) है। इससे रस स्राव होता है। अधिक रस निकलने के लिए इसमें श्लैष्मिक झिल्ली के बहुत से छोटे-छोटे छेद है। इसकी कोशिकाओं में कोई रक्तवाहिनी नहीं होती परन्तु इसकी जड़ तक बहुत सी रक्त वाहिनियाँ जाती है। श्लैष्मिक झिल्ली का कार्य रक्त स्राव करना है।

पेट के अन्दर झिल्ली में एक प्रकार का नमक उत्पन्न होता है। जिसे Hydrochloric acid कहते हैं। साथ ही Pepsin और Ranet नाम के दो रस और होते है जो कि भोजन के साथ मिलकर उसे पाचन योग्य बना देते है। इसके बाद भोजन बारीक होकर आँतों में चला जाता है। जब भोजन को दाँतों से अच्छी तरह नही चबाया जाता तब पेट का काम बढ़ जाता है और उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है। व्यायाम न करने से अथवा गरिष्ठ खाने से भी पाचन प्रणाली बिगड़ जाती है और मन्दाग्नि हो जाती है। भूख कम लगती है, खाना ठीक तरह हजम नही होता और पाचन प्रणाली बिगड़ने से अनेक प्रकार के रोग हो जाते है। इन रोगों को दूर करने के लिए मनुष्य अनेक प्रकार की दवायें खाता है। मगर उससे क्षणिक लाभ होता है।

नाभि-चालन क्रिया करने से आमाशय को बड़ी शक्ति मिलती है। उसकी झिल्लियों से निकलने वाली पेप्सिन व रेनट रस की मात्रा भी बढ़ जाती है और मंदाग्नि दूर होकर भूख लगने लगती है और भोजन अच्छी तरह पच जाता है। जब पाचन प्रणाली ठीक हो जाती है तो शरीर के अन्य रोग भी दूर हो जाते है। भगवान् ने गीता में कहा है कि:-

अहं वैश्वानरों भूत्वा, प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः, पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।

अर्थ-मैं सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्नि रूप होकर प्राण और अपान से युक्त हुआ चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

भक्ष्य, भोज्य लेह्य और चोष्य ऐसे चार प्रकार के अन्न होते है। जो चबाकर खाया जाता है- वह भक्ष्य है जैसे रोटी आदि। जो निगला जाता है वह भोज्य है जैसे दूध आदि। जो चाटा जाता है, वह लेह्य है जैसे चटनी आदि और जो चूसा जाता है वह चोष्य है जैसे गन्ना आदि। भोजन के सभी पदार्थ इन्ही चार प्रकारों के अन्तर्गत आ जाते है। इनका पाचन पेट की अग्नि तभी करती है, जब वह प्राण व अपान वायु से युक्त हो जाती है। जब अग्नि मन्द पड़ जाती है तब प्राण अपान से युक्त होकर भी भोजन को नही पचा पाती। नाभि-चालन क्रिया की यह विशेषता है कि साधक की अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और उसका संयोग प्राण व अपान से भी हो जाता है। यही कारण है कि इस क्रिया को अधिक मात्रा में करने वाले साधक की वैश्वानर अग्नि इतनी तेज हो जाती है कि वह चाहे कच्ची दाल कच्ची सब्जी आदि जो कुछ खाये सब हजम हो जाता है।

नाभि-चालन क्रिया से एक और लाभ अनुभव में आया है। जब इस क्रिया को काफी देर तक किया जाता है तो मूलाधार चक्र पर बार-बार धक्का लगता है और वहाँ पर सोई कुण्डलिनी जाग जाती है और ऊपर चढ़ने लगती है। कुण्डलिनी के जाग्रत होने से क्या लाभ होता है इसे योगी लोग जानते है। इसी कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए योगी लोग अनेक प्रकार की योग की क्रियायें करते है। इस विषय को हम विस्तार से समझाने का प्रयास करेंगे।

कुण्डलिनी

कुंडली कुटिला कारा, सर्पवत्परिकीर्तिता।
सा शक्तिश्चालिता येन, स मुक्तो नात्र संशयः।।

अर्थ–कुण्डलिनी सांप की तरह चक्कर मारकर बैठी हुई है जो इस शक्ति को चलायमान कर देता है वह मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नही है।

कुण्डलिनी का स्थान बताने मे सबकी भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ हैं। कोई Para-Sympathetic System मे अथवा कोई Inferior Vena Cave मे बताता है। सहयोग वाले बताते है कि कुंडलिनी कुंडा के पास सांप की तरह कुंडल मारकर बैठी हुई है और उसकी दुम मूलाधार चक्र में स्थित है। कुंडा का स्थान नाभि और लिंग के बीच मे बताते है। कुछ पश्चिमी विद्वानों का मत है कि कुंडलिनी मणिपूरक चक्र मे पहली और दुसरी Lumber Vertibra के सौध मे Conus Medullaris के पास स्थित है। कुंडलिनी जिस समय जाग्रत होती है उस समय अपना कुंडल छोड़कर धीरे- धीरे ऊपर चढ़ती है। छः चक्रों को भेदती हुई तालुका चक्र Fifth Cranial Nerve के आँखो वाले बीच का Naso-Ciliary बढ़ाव है। इसका अन्त पुतली के Ciliary माँस पेशियों मे नाक की जड़ पर Supera Orbital Foramen मे होता है। यही मनुष्य के मस्तिष्क में तृतीय नेत्र का स्थान है। यहाँ से कुण्डलिनी वाह्य चक्र Cerebrum Plexus में आती है। उस समय मस्तिष्क का विकास हो जाता है और योगी की आत्मा स्वतन्त्र हो जाती है।

कुछ पश्चिमी विद्वान कुण्डलिनी को (Serpent power) के नाम से पुकारते है। और (Vagus nerve) ही को कुंडलिनी कहते है (Vagus या Pneumogastric) अथवा (Tenth cranial nerve) मस्तिष्क के पिछले भाग से निकलती है और उसकी बहुत सी शाखायें हो जाती है। इस स्नायु में ही केवल Efferent और Offerent दोनों प्रकार के तन्तु होते है। जब यह Fourth ventricle के Grey matter से निकलकर Jugular foreman से बाहर आती है तब उसमे एक प्रकार की सूजन होती है जिसको Jugular ganglion कहते है। यहाँ से तालुका-चक्र की शाखायें जाती है जिसको ganglion nodosum कहते है। यहाँ से Vagus nerve मेरुदण्ड के साथ-साथ गर्दन, छाती और पेट तक जाकर मणिपूरक चक्र मे समाप्त हो जाती है किन्तु बीच मे इसकी शाखायें Autonomic Nerves System स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल के Prevertebral Plexus को तथा गर्दन मे विशुद्ध चक्र को व हृदय में अनाहंद चक्र को भी जाती है। मणिपूरक चक्र के नीचे भी कुछ शाखायें Renal, hepetic splenic और pancreatic plexus को गई हुई है और मूलाधार चक्र मे समाप्त हो गई है।

***

शुभाशंसा

श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तो वर्णाश्रमविभूषकः।
सत्याचारसमायुक्तः सतांचारः प्रसीदतु।।

यस्य संस्थापनार्थाय काले काले जगद्गुरुः।
अजोऽपिसन्नव्ययात्मा चात्मानं सृजति स्वयम्।।

रक्षार्थे यस्य धर्मस्य धर्म्याचारस्य सर्वथा।
धार्मिकाः संस्कृतिज्ञाश्च आर्याः प्राणांश्च तत्यजुः।।

सोऽयं पीडितो विष्णो ! सदाचारपराङ्मुखैः।
भ्रष्टाचारेण संतप्तो दुर्बलत्वं गतस्तथा।

सदाचारप्रचारार्थे सर्वभूतहिताय च।
विश्वजन्यां मतिं यच्छ उद्धर्षय मनांसि नः।।

'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।'

वेदों, धर्मशास्त्रों और पुराणों में प्रतिपादित चारों वर्णों और चारों आश्रमों को सुशोभित करने वाला, सच्चे व्यवहार से युक्त सज्जनों का आचरण- सदाचार विश्व में फैले और फूले-फले।

जिस मर्यादारूप सदाचार के प्रतिष्ठान के लिये समय-समय पर भगवान् अजन्मा और अनश्वर होते हुए भी स्वयं अपने को प्रकट करते हैं, और जिस धर्म और धर्म्याचार की सब प्रकार से रक्षा करने के लिये ही पुराने धार्मिक और सांस्कृतिक (संस्कारी) आर्य लोगों ने अपने प्राणों का भी त्याग (बलिदान) किया, हे विष्णो ! वह (धर्म्य सदाचार) आज सदाचार से पराङ्मुख हुए लोगों- (और व्यवहारों-) द्वारा पीड़ित और भ्रष्टाचार से संतप्त है। अतः सब प्राणियों की भलाई के लिये उस सदाचार के प्रचारार्थ हमें विश्व-कल्याण-कारिणी मति दीजिये और तदर्थ हमारे मनको ऊपर उठाइये। 'वह हमारा मन मंगलमय संकल्प वाला हो- *'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।'*

SIDDHYOG Regd. No. L. AG. 008 अगस्त 2000

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री ....

....

....

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृह।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।

—श्रीमद भगवद् गीता २/७१

जिस व्यक्ति ने इन्द्रियों की समस्त इच्छाओं का त्याग कर दिया है और इच्छाओं से रहित हो गया है और जिसने सारा मोह त्याग दिया है तथा अहंकार से रहित है वही व्यक्ति वास्तव में शान्ति को प्राप्त कर सकता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिन्टिंग प्रेस, बसई कलॉ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिन्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326